वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656

9 772582 065005

विवेक ज्योति

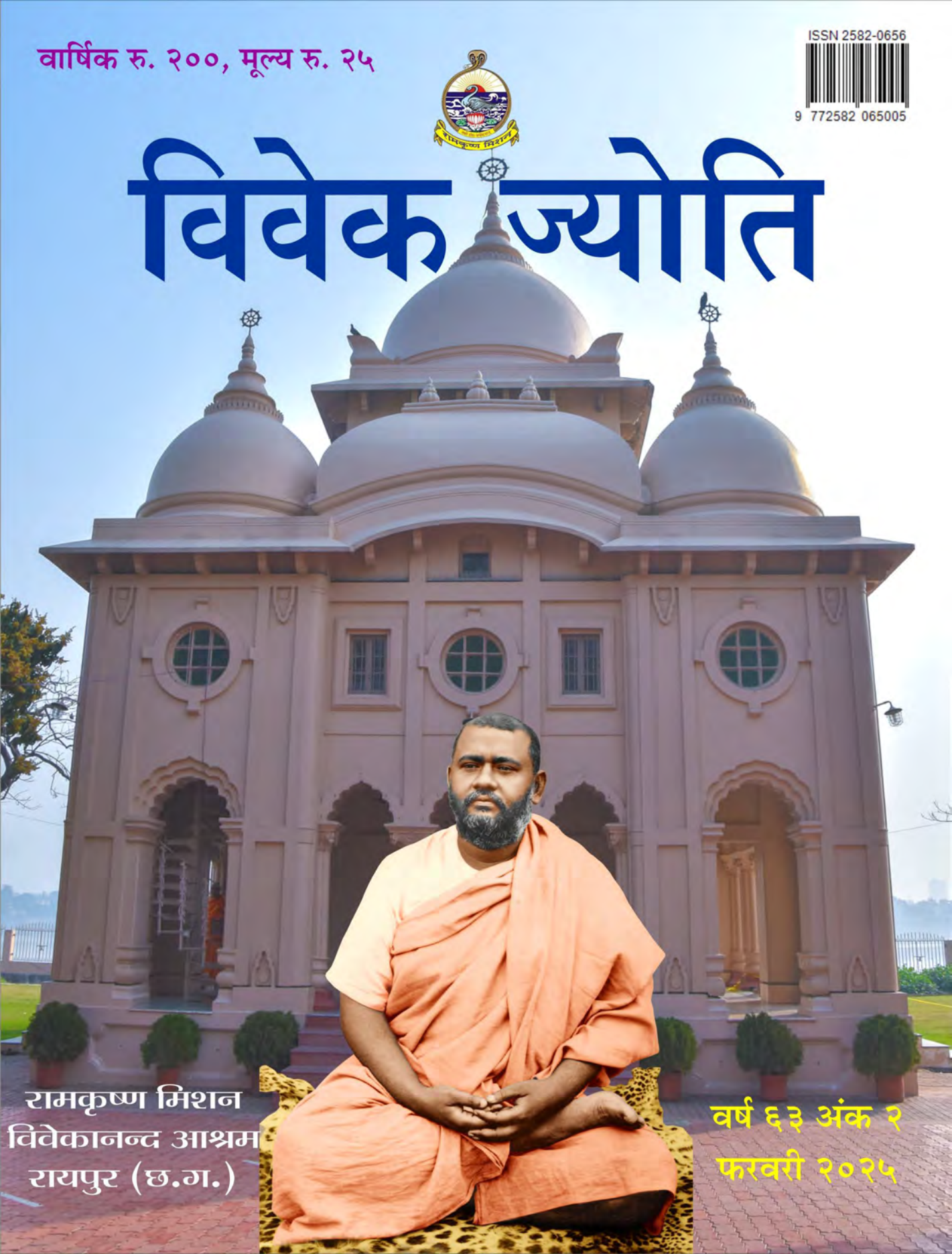

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६३ अंक २
फरवरी २०२५

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६३

अंक ०२

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

माघ, सम्वत् २०८१

फरवरी, २०२५

अनुक्रमणिका

* तू सर्वव्यापी आत्मा है, इसका मनन और ध्यान कर : विवेकानन्द ५४
* बेलूड़ मठ में स्वामी ब्रह्मानन्द मन्दिर (स्वामी विमलात्मानन्द) ५७
* स्वामी ब्रह्मानन्द और भुवनेश्वर (स्वामी तन्निष्ठानन्द) ५९
* श्रीरामकृष्ण के लीला-साथी मानस-पुत्र राखाल (स्वामी ईशानन्द) ६८
* (बच्चों का आंगन) पाठशाला में मित्रों के पिटाई से दुखित राखालराज (श्रीमती मिताली सिंह) ७१
* शिवसूक्तम् (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) ७२
* स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी (स्वामी सत्यरूपानन्द) ७३
* (युवा प्रांगण) युवाशक्ति के प्रेरक स्वामी ब्रह्मानन्द (स्वामी गुणदानन्द) ७५
* ओंकारेश्वर तीर्थ, माँ नर्मदा और स्वामी ब्रह्मानन्द (डॉ. अन्वय मुखोपाध्याय) ७९
* भगवान भूतनाथ और भारत (पं. श्री अयोध्यासिंह जी उपाध्याय) ८३
* स्वामी ब्रह्मानन्द की काशी-लीला (उत्कर्ष चौबे) ८४
* कैलाश और शिवतत्त्व (ओमप्रकाश श्रीवास्तव) ८८
* (कविता) श्रीनर्मदा-स्तुति (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ६४
* (कविता) देवी सरस्वति तुम्हें प्रणाम (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ७२
* (कविता) ठाकुर शरण तुम्हारी आया (आनन्द तिवारी 'पौराणिक') ७८
* ब्रह्मानन्द चरित गान (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी') ८१

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५३
पुरखों की थाती ५३
सम्पादकीय ५५
रामगीता ६५
श्रीरामकृष्ण-गीता ७४
प्रश्नोपनिषद् ८२
गीतातत्त्व-चिन्तन ९०
साधुओं के पावन प्रसंग ९३
समाचार और सूचनाएँ ९५

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : **०९८२७१ ९७५३५** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,**
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	६०यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	

भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दर्शाया गया चित्र स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज और ब्रह्मानन्द मन्दिर, बेलूड़ मठ का है।

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

फरवरी माह के जयन्ती और त्यौहार

०२	सरस्वती पूजा, स्वामी त्रिगुणातीतानन्द
१२	स्वामी अद्भुतानन्द
२६	महाशिवरात्रि
८,२४	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री रामराज प्रसाद एवं श्रीमती उषा प्रसाद की स्मृति में अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी, गाजियाबाद (उ.प्र.) द्वारा	९,००१/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

रामकृष्ण मिशन आश्रम,

मोराबादी, राँची - 834008 (1927-2027),

e-mail : ranchi.morabadi@rkmm.org, Web : www.rkmranchi.org

श्रीरामकृष्ण मन्दिर नवनिर्माण के लिए विनम्र निवेदन

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य श्रीमत् स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज के चरण रज से पवित्र तथा श्रीश्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य एवं रामकृष्ण संघ के आठवें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज की तपस्थली ''रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची'' की स्थापना 1927 में हुई थी। शीघ्र ही वर्ष 2027 ई. में इस आश्रम की स्थापना का शताब्दी वर्ष प्रभु कृपा से हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाएगा । रामकृष्ण संघ के 11 वें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज के तपस्या से पवित्र इस आश्रम हेतु हम सभी अनुरागी, भक्तों और शुभ-चिन्तकों के लिए सेवा-यज्ञ में आहुति प्रदान करने का यह परम-पवित्र अवसर है । आश्रम के इस शताब्दी वर्ष में विशेषकर राँची जिला के निकवटर्वी गाँवों में आदिवासी जनजाति के कल्याण के साथ-साथ उनके सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम का आयोजन श्रीश्रीठाकुर, श्रीमाँ तथा स्वामीजी द्वारा प्रदत्त पथ के माध्यम से हो रहा है ।

आश्रम परिसर में श्रीश्रीठाकुर, श्रीश्रीमाँ तथा स्वामीजी का वर्तमान मन्दिर अत्यन्त छोटा तथा भग्नावस्था में है । अतः मन्दिर का नव निर्माण अनिवार्य है इसके साथ ही साथ आश्रम परिसर के परिदृश्य (लैंड स्केपिंग) में भी आवश्यक सुधार अपेक्षित है। इसके अलावा साधु निवास, रसोई घर एवं भोजनालय भी प्रस्तावित है । इस विस्तार के लिए मनुमानित लागत निम्न प्रकार है :

कं.सं.	निर्माण	क्षेत्रफल (वर्ग फीट में)	प्रस्ताव	अनुमानित लागत (करोड़ में)
1.	मन्दिर तथा लैंड स्केप	15,198	दो तलों में निर्माण तथा परिसर का सौंदर्यीकरण	6.0
2.	साधु निवास, रसोई घर एवं भोजनालय	7,500	वर्तमान साधु निवास के ऊपर एक तल का निर्माण, रसोईघर, भोजनालय का पुनर्निमाण	1.5
			कुल लागत	7.5

इस शताब्दी वर्ष के अवसर पर सभी भक्तों से अनुरोध है कि कृपया इस महत्त्वपूर्ण कार्य में आप यथासंभव योगदान कर पुण्य के भागी बनें ।

ध्यातव्य : प्रदत्त दान आयकर की धारा 80 जी के अन्तर्गत करमुक्त है। एक लाख से अधिक दानदाताओं का नाम मन्दिर परिसर पर अंकित होगा । दानकर्ताओं को 4 श्रेणियों में सम्मानित किया जाएगा ।

1) रजत श्रेणी : रुपये 1 लाख से 5 लाख तक

2) स्वर्ण श्रेणी : रुपये 5 लाख से अधिक व 10 लाख तक

3) हीरक श्रेणी : रुपये 10 लाख से अधिक व 20 लाख तक

4) प्लेटेनियम श्रेणी : रु. 20 लाख से अधिक

निवेदन : मन्दिर निर्माण हेतु सहयोग राशि निम्नलिखित बैंक खाते के माध्यम से कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किये जायेंगे ।

Click Below fro Online Donation :
https://bit.ly/317 lzyh
Scan the below given QR Code to log into our Online Donation Site

Account Name : Ramakrishna Mission Ashrama,
Account No. : 50200081665283
Bank Name : HDFC BANK LTD. Morabadi,
IFSC CODE : HDFC0007443

सहयोग राशि के साथ अपना ईमेल, पैन नं., मोबाईल नं., पूरा पता एवं उद्देश्य हमारे ईमेल **ranchi.morabadi@rkmm.org** या मोबाईल नं. 9835158705 पर भेजें ।

प्रभु की सेवा में आपका
स्वामी भवेशानन्द
सचिव

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

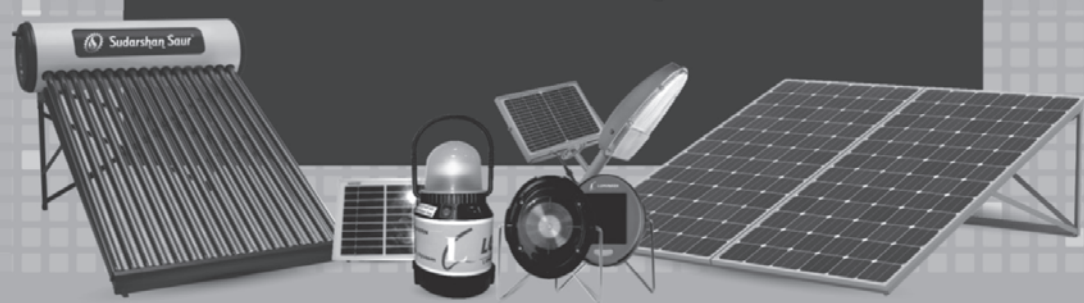

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६३ फरवरी २०२५ अंक ०२

स्वामी ब्रह्मानन्द–स्तुतिः

ब्रह्मानन्दं वरेण्यं यतिवरमनिशं भावसिन्धौ निमग्नं,
संसारार्त्तान् मनुष्यान् सहजकरुणया चेतयन्तं महान्तम्।।
शुद्धं शान्तं प्रकाशं विदितचितिसुखं रामकृष्णान्तरंगं,
ध्यायेद्दिव्याकृतिं भोः कलिकलुषहरं चिद्घनं मूर्तिमन्तम्।।
रामकृष्णास्त्वभूतं येन पुत्रवान् भौममण्डले ।
ब्रह्मानन्दं नमामि त्वां राखालदलनायकम् ।।

– वरणीय संन्यासीश्रेष्ठ भावसिन्धु में निमग्न एवं सांसारिक दुखों से आर्त्त प्राणियों में सहज करुणा से सर्वदा चेतना का संचार करनेवाले, महापुरुष, शुद्ध, अत्यन्त शान्त, ज्ञान-प्रकाश से पूर्ण, चिदानन्द आत्मा के स्वरूपज्ञ श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग भक्त, दिव्य शरीरधारी, कलि के पापनाशक, मूर्तिमान चैतन्यघन, ब्रह्मानन्द स्वामी का ध्यान करना चाहिये।

श्रीरामकृष्ण भूमण्डल पर जिससे पुत्रवान् बने, उस राखालदल के नायक आप स्वामी ब्रह्मानन्द जी को मैं नमस्कार करता हूँ।

पुरखों की थाती

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः।
वाग्यताः शुचयश्चैव श्रोतारः पुण्यशालिनः।।८५७।।

– भाग्यवान श्रोता वह है जो श्रद्धा-भक्ति से युक्त है, जिसमें ज्ञानप्राप्ति के सिवा अन्य कोई लालसा नहीं है, जिसका अपनी वाणी पर संयम है और जो मन से पवित्र है।

श्रमेण दुःखं यत्किञ्चित्कार्यकालेऽनुभूयते।
कालेन स्मर्यमाणं तत् प्रामोदं प्रकल्पते।।८५८।।

– किसी कार्य के लिये परिश्रम करते समय थोड़ा दुख-कष्ट तो होता है, परन्तु बाद में उसका स्मरण करते हुए वह आनन्द प्रदान करता है।

सद्विद्या यदि का चिन्ता वराकोदर-पूरणे।
शुकोऽप्यशनमाप्नोति रामरामेति च ब्रुवन् ।।८५९।।

– यदि व्यक्ति के पास सद्-विद्या हो, तो उसकी पेट भरने की चिन्ता दूर हो जाती है, क्योंकि तोता भी तो 'राम राम' बोलते हुए अपना भोजन पा ही लेता है।

तू सर्वव्यापी आत्मा है, इसका मनन और ध्यान कर : विवेकानन्द

मान लो, मन किसी एक विषय को सोचने का प्रयत्न कर रहा है, किसी एक विशेष स्थान में जैसे, मस्तक के ऊपर अथवा हृदय आदि में अपने को पकड़ रखने का प्रयत्न कर रहा है। यदि मन शरीर के केवल उस अंश के द्वारा संवेदनाओं को ग्रहण करने में समर्थ होता है, शरीर के दूसरे भागों के द्वारा नहीं, तो उसका नाम धारणा है और जब वह अपने को कुछ समय तक उसी अवस्था में रखने में समर्थ होता है, तो उसका नाम है ध्यान। (१/१८५)

ध्यान ही सबसे महत्त्वपूर्ण है। मन की यह ध्यानावस्था आध्यात्मिक जीवन की सर्वाधिक समीपता है। समस्त जड़ पदार्थों से मुक्त होकर आत्मा का अपने आप के बारे में चिन्तन, आत्मा का यह अद्‌भुत संस्पर्श, यही हमारे दैनिक जीवन में एकमात्र ऐसा क्षण है, जब हम किंचित्‌ भी पार्थिव नहीं रह जाते। (३/९७)

तू सर्वव्यापी आत्मा है, इसी बात का मनन और ध्यान किया कर। मैं देह नहीं, मन नहीं, बुद्धि नहीं, स्थूल नहीं, सूक्ष्म नहीं, इस प्रकार 'नेति' 'नेति' करके प्रत्यक्‌ चैतन्य रूपी अपने स्वरूप में मन को डूबो दे। इस प्रकार मन को बार-बार डुबो-डुबो कर मार डाल। तभी ज्ञानस्वरूप का बोध या स्व-स्वरूप में स्थिति होगी। उस समय ध्याता-ध्येय-ध्यान एक बन जायेंगे, ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान एक हो जायेंगे। सभी अध्यासों की निवृत्ति हो जायगी। इसी को शास्त्र में 'त्रिपुटि भेद' कहा है। इस स्थिति में जानने, न जानने का प्रश्न ही नहीं रह जाता। आत्मा ही जब एकमात्र विज्ञाता है, तब उसे फिर जानेगा कैसे? आत्मा ही ज्ञान, आत्मा ही चैतन्य, आत्मा ही सच्चिदानन्द है। (६/१६६)

आध्यात्मिक जीवन का सबसे बड़ा सहायक 'ध्यान' है। ध्यान के द्वारा हम अपने भौतिक भावनाओं से अपने आपको स्वतन्त्र कर लेते हैं और अपने ईश्वरीय स्वरूप का अनुभव करने लगते हैं। ध्यान करते समय हमें कोई बाहरी साधनों पर अवलम्बित नहीं रहना पड़ता। (३/१२३)

पहले किसी एक विषय का आश्रय कर ध्यान का अभ्यास करना पड़ता है। किसी समय मैं एक छोटे से काले बिन्दु पर मन को एकाग्र किया करता था। परन्तु कुछ दिन के अभ्यास के बाद वह बिन्दु मुझे दीखना बन्द हो गया था। वह मेरे सामने है या नहीं; यह भी ध्यान नहीं रहता था। निवात समुद्र के समान मन का सम्पूर्ण निरोध हो जाता था। ऐसी अवस्था में मुझे अतीन्द्रिय सत्य की परछाई कुछ-

कुछ दिखायी देती थी। इसलिए मेरा विचार है कि किसी सामान्य बाहरी विषय का भी आश्रय लेकर ध्यान करने का अभ्यास करने से मन की एकाग्रता होती है। जिसमें जिसका मन लगता है, उसी के ध्यान का अभ्यास करने से मन शीघ्र एकाग्र हो जाता है। इसीलिए हमारे देश में इतने देव-देवी की मूर्तियों के पूजने की व्यवस्था है। देव-देवी पूजा से ही शिल्प की उन्नति हुई है। परन्तु इस बात को अभी छोड़ दो। अब बात यह है कि ध्यान का बाहरी अवलम्बन सब का एक नहीं हो सकता। जो जिस विषय के आश्रय से ध्यान-सिद्ध हो गया है, वह उस अवलम्बन का ही वर्णन और प्रचार कर गया है। कालान्तर में वे मन को स्थिर करने के लिए हैं, इस बात के भूलने पर लोगों ने इस बाहरी अवलम्बन को ही श्रेष्ठ समझ लिया। उपाय में ही लोग लगे रह गये, उद्देश्य पर लक्ष्य कम हो गया। मन को वृत्तिहीन करना ही उद्देश्य है, किन्तु यह किसी विषय में तन्मय हुए बिना असम्भव है।(६/४३-४४)

किसी विषय पर मन को एकाग्र करने का ही नाम ध्यान है। किसी एक विषय पर भी मन की एकाग्रता हो जाने से वह एकाग्रता जिस विषय पर चाहो, उस पर लगा सकते हो। (६/४३)

सम्पादकीय

ब्रह्म के आनन्द में स्वामी ब्रह्मानन्द

युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने स्वयं अपने मुखारविन्द से कहा था – ''ये तथा अन्य लड़के राखाल, भवनाथ, पूर्ण, बाबूराम आदि साक्षात् नारायण हैं। मेरे लिये देह-धारण कर आये हैं।''[१] जब श्रीरामकृष्ण देव ने राखाल को देखा था, तो देखते ही समझ गये थे कि यह वही लड़का है, जिसे उन्होंने भाव-राज्य में देखा था, जिसे माँ काली ने इंगित किया था। जो बालक अवतार के भाव-राज्य में दिखा, जिसे स्वयं जगत्जननी अवतार आराध्या काली ने इंगित किया हो, वह कोई सामान्य बालक तो नहीं हो सकता। इसलिये श्रीरामकृष्ण के अत्यन्त स्नेहभाजन श्रीराखालराज के सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही उच्च दृष्टिकोण और श्रेष्ठ भाव-धारणा रखना आवश्यक है।

एक दिन युगावतार श्रीरामकृष्ण देव ने माँ काली से हठ किया था – ''माँ ! मेरी तो सन्तान होगी नहीं, किन्तु इच्छा होती है कि एक शुद्ध सत्त्व लड़का सर्वदा मेरे साथ रहे। ऐसा ही एक लड़का मुझे दे दो।'' इसके कुछ दिनों बाद उन्होंने अपने भाव-चक्षुओं से देखा कि श्रीजगदम्बा एक सुन्दर शिशु को उनकी गोद में बैठा कर कह रही हैं, ''यह तुम्हारा पुत्र है।'' त्यागी, विरागी श्रीरामकृष्ण थोड़ा विचलित हुये, लेकिन माँ जगज्जननी ने उन्हें समझाते हुये आश्वासन दिया, 'साधारण सांसारिक सम्बन्ध से पुत्र नहीं, वरन् एक त्यागी, शुद्ध मानसपुत्र की उन्हें प्राप्ति होगी।' वह बालक थे राखालराज, जो युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र के रूप में प्रथित हुये, जो आगे चलकर रामकृष्ण संघ में सबके पूज्य स्वामी ब्रह्मानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, जो रामकृष्ण संघ के प्रथम महाध्यक्ष बने और जिन्होंने अपने जीवन के अन्त तक संघ का सम्यक् संचालन किया।

हम देखते हैं कि स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज कोई सामान्य बालक नहीं थे, अपितु माँ जगदम्बा द्वारा चिह्नित और श्रीरामकृष्ण के अत्यन्त प्रिय थे। पुत्र में पिता के गुण स्वाभाविक रूप से आते हैं। राखालराज ने भी श्रीरामकृष्ण के गुणों को विरासत के रूप में पाया था। त्याग-वैराग्य की प्रतिमूर्ति श्रीरामकृष्ण भगवद्-भजन, नृत्य और बार-बार समाधिस्थ होते हुये दृष्टिगोचर होते हैं। समाधि उनकी सहज प्रवृत्ति थी। थोड़ी-सी भगवन्नाम-गुण-कीर्तन की उद्भावना उन्हें भावराज्य में लेकर चली जाती थी, वे समाधिस्थ हो जाते थे। मानो वे 'सहज समाधि भली' के जीवन्त विग्रह थे। ऐसे श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में रहकर उनकी योग्य सन्तान कैसे इन महान उपलब्धि से वंचित हो सकती है ! स्वामी ब्रह्मानन्द भी भजन-कीर्तन-प्रिय थे और अधिकांश भाव-राज्य में विचरण करते हुये दृष्टिगोचर होते थे।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी के दिव्य चरित्र का वर्णन करते हुये स्वामी प्रभानन्द जी लिखते हैं – ''श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र राखाल, रामकृष्ण सत्ता का ही प्रतिफलन हैं; जिस प्रकार शिशिर-बिन्दु में किरण-सिन्धु मार्तण्ड ही प्रतिबिम्बित होता है, उसी प्रकार राखाल-चरित्र के माध्यम से अवतारवरिष्ठ श्रीरामकृष्ण देव ही मानो मूर्त हो उठे हैं। जननी यशोदा की आँखों के तारे राखाल अत्यन्त सुन्दर, पवित्र शिशु श्रीरामकृष्ण के दुलारे चिर बालक राखाल हैं, वे मुमुक्षुओं के सद्गुरु, त्रितापदग्ध संसारवासियों के लोकगुरु हैं और वे ही हैं रामकृष्ण संघ के कर्णधार।''[२]

बाल्य-काल में भजन-प्रिय राखाल

जब हम राखालराज के बचपन की दिनचर्या का अवलोकन करते हैं, तो पाते हैं कि बाल्यकाल से ही उनकी रुचि पूजा-पाठ में थी। स्वामी ब्रह्मानन्द चरित के प्रणेता स्वामी प्रभानन्द जी महाराज लिखते हैं – ''आयु के साथ-साथ बालक के हृदय में देव-द्विज के प्रति भक्ति भी विकसित होती गई। अपने हाथों काली की मूर्ति बनाकर साथियों के साथ पूजा-पूजा खेलना बालक को अच्छा लगता था। कभी पुरोहित बनता, कभी लुहार बनकर खेल के बकरे की बलि देता। बालक को भजन अच्छा लगता। भिखारी वैरागियों से कीर्तन सुनकर सहज ही सीख लेता। बालक के नेतृत्व में घर के प्रांगण में कीर्तन होता, कभी गाँव के दक्षिण में ताल, कटहल, खजूर वृक्षों से घिरे पीर की दरगाह में श्यामासंगीत की सभा होती, कभी निर्जन स्थान में ध्यान-ध्यान खेल में बालक स्थिर निश्चल होकर बैठा रहता। प्राचीन दुर्गा-मण्डप में प्रति वर्ष दुर्गोत्सव होता है। आनन्दित होकर शिशु क्रीड़ा करते हैं। राखाल उस समय पूजा-मण्डप में बैठकर स्थिर दृष्टि से पूजा देखता है, आरती देखता है।''[३]

युवावस्था में राखाल का सम्बन्ध ब्राह्म समाज से हुआ। वहाँ वे ब्राह्म समाज के निर्देशानुसार ध्यान भी करते थे। धीरे-धीरे उनका मन सांसारिक विषयों के प्रति उदासीन रहने लगा और वे अन्तर्मुखी होने लगे। ईश्वर की आराधना उनके जीवन का प्रमुख केन्द्र बन गया। यद्यपि माता-पिता ने अल्पायु में ही उनका विवाह कर दिया, किन्तु ये सारे बन्धन उनको बाँध नहीं सके। राखालराज ने ईश्वरानुभूति और ईश्वरसान्निध्य हेतु अपनी प्रियतमा, अपने सुपुत्र और समृद्ध परिवार का त्याग कर दिया। त्याग और शील उनके जीवन के अभिन्न अंग थे। श्रीरामकृष्ण के सान्निध्य में वे साधनारत रहते थे। श्रीरामकृष्ण स्वयं राखाल के पिताजी से कहते हैं, ''अहा ! आजकल राखाल का स्वभाव कैसा हो गया है ! उसके मुँह पर दृष्टि डालने से देखोगे, उसके होंठ रह-रहकर हिल रहे हैं। अन्तर में ईश्वर का नाम जपता है, इसलिये होंठ हिलते रहते हैं।''[४]

श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद वाराहनगर मठ में भी हम राखाल महाराज को जप-ध्यानपरायणावस्था में देखते हैं। जप-ध्यान की प्रवृति और ब्रह्म के आनन्द की अनुभूति की अभिलाषा उन्हें नर्मदा मैया के तट की ओर आकर्षित कर रही थी, जहाँ वे ब्रह्मानन्द में निमग्न रहते थे।

राम-लक्ष्मण-सीताजी का दर्शन

एक दिन ब्रह्मानन्द जी ने भाव-चक्षुओं से दर्शन किया, पम्पा सरोवर के तट पर तपस्वी वेश में श्यामल सुन्दर श्रीराम, पास ही खड़ी तपस्विनी जननी श्रीसीता जी कुछ दूर कुटीर के सम्मुख हैं और ब्रह्मचारी वेश में भ्राता लक्ष्मण हैं। 'जय राम सीता राम' उच्चारण करते-करते आनन्द विह्वल होकर ब्रह्मानन्द बाह्य-ज्ञानशून्य हो गये। इसी प्रकार वृन्दावन, वाराणसी, भुवनेश्वर, वैद्यनाथ, विन्ध्याचल, आबू और दक्षिण भारत आदि स्थान उनकी दिव्य भाववस्था से आप्लावित हुये हैं।

गोपाल-भाव में ब्रह्मानन्द जी महाराज

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के सम्बन्ध में मद्रास में घटित यह घटना उल्लेखनीय है, जो उनके स्वरूप-अवस्थिति का परिचायक है। मद्रास में कुछ महाराष्ट्रीय भक्तों ने महाराज को निमन्त्रित किया। महाराज उनके यहाँ गये और एक इजीचेयर पर बैठ गये। उनकी दाहिनी ओर महापुरुष महाराज और बाँयीं ओर रामलाल दादा बैठे। महाराज के सम्मुख सुगन्धित जल तथा पूजोपकरण रखे हुये थे। मराठी महिलाओं ने गुरुवन्दना कर गोपाल की पूजा की उसके बाद महाराज को छोटी चौकी पर चाँदी के पात्र में महाराज के श्रीचरणों को रखकर सुगन्धित जल से धोया, अपने सिर के केश से पोंछा, चन्दन-माला से सजाकर चरण-पूजा की। उसके बाद दूध का घड़ा कमर पर रखकर अपने-अपने हाथों में एक-एक ग्लास दूध लेकर महाराज को घेरकर गीत गाते हुये नृत्य करने लगीं –

दूध पीओ मेरे राजगोपाला, दूध पीओ मेरे नन्ददुलाला।
काली रे बाछोरा कपिला गाइ, दूध दोहायन नाम लागि।

नृत्य करनेवाली एक-एक महिला महाराज के सम्मुख आकर दूधपूर्ण गिलास रखती थी और महाराज ग्लास पर ग्लास दूध पीते जा रहे थे। नृत्य-गीत के बाद महाराज को प्रणाम कर पूजा समाप्त हुयी। बहुत देर बाद महाराज सहज अवस्था में आये। इस घटना को सुनकर सारदानन्दजी ने कहा था, ''यहीं महाराज की स्वरूपस्थिति उद्दीपित हो गयी थी।''

नृत्य से भावसमाधि

एक बार राजा महाराज स्वामी ब्रह्मानन्द जी के अनुरोध पर कई वर्षों बाद श्रीमाँ मठ में आयी हुयी थीं। सर्वत्र आनन्द का वातावरण था। श्रीमाँ के स्वागत की भव्य व्यवस्था की गयी थी। मुख्य द्वार पर श्रीमाँ का भव्य स्वागत किया गया। वहाँ से माँ ऊपर मन्दिर में गईं और उसके बाद महापुरुष महाराज के कक्ष में जाकर खिड़की के पास बैठकर मठ-प्रांगण में हो रहे, कीर्तन को देखने लगीं। थोड़ी देर बाद कीर्तन में नृत्य भी होने लगा। उसमें राजा महाराज भी नृत्य कर रहे थे। भावावेग में राजा महाराज अपने को सँभाल नहीं पा रहे थे, इसलिये स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज सहारा देकर उन्हें अन्दर ले गये और स्वामी विवेकानन्द जी के कक्ष के नीचे के कमरे में सुला दिये। वे अचेत हो गये। बहुत देर बाद जब राजा महाराज को चेतना नहीं आई, तो श्रीमाँ को किसी ने सूचना दी। श्रीमाँ ने आकर राजा महाराज की छाती का स्पर्श किया, तो उनकी चेतना वापस आ गयी। श्रीमाँ ने कहा, नृत्य करते हुये समाधि में चले जाना कोई विस्मय की बात नहीं है, क्योंकि उसके पीछे ही मैंने ठाकुर को भी नृत्य करते हुये देखा था।''[५] स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के जीवन की ऐसी अनेकों घटनायें हैं, जो उन्हें सर्वदा ब्रह्म के आनन्द में निमग्न रहने की ओर इंगित करती हैं। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत **२.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित – स्वामी प्रभानन्द, पृ. ५, **३.** वही, पृ. ९ **४.** श्रीरामकृष्ण-वचनामृत १/१४/७ **५.** विवेक ज्योति, अक्तूबर, २०२१, पृ ४४५

स्वामी ब्रह्मानन्द जयन्ती विशेष

बेलूड़ मठ में स्वामी ब्रह्मानन्द मन्दिर

स्वामी विमलात्मानन्द

उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन

तथा अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, योगोद्यान, कोलकाता

श्रीरामकृष्ण के मानस पुत्र 'राखाल राजा', स्वामीजी के प्यारे, 'राजा', श्रीरामकृष्ण संघ में सुपरिचित 'श्रीमहाराज' स्वामी ब्रह्मानन्द जी। उनके दीर्घ २१ वर्ष तक अध्यक्ष पद पर रहने के समय रामकृष्ण संघ मजबूत नींव पर प्रतिष्ठित हुआ।

१० अप्रैल, १९२२ ई. को बलराम मन्दिर में 'श्रीमहाराज' का देहावसान हुआ। गंगा के किनारे पवित्र होमाग्नि में उनकी देह समर्पित की गयी। यह निश्चित किया गया कि उनके समाधिस्थल के ऊपर स्मृति-मन्दिर का निर्माण किया जायेगा। उनके ही शिष्य स्वामी शंकरानन्द जी को इस कार्य का दायित्व प्रदान किया गया। उनके दूसरे शिष्य स्वामी निर्वाणानन्द जी भी बीच-बीच में मन्दिर-निर्माण के कार्य का निरीक्षण करते रहते थे। उनके कुशल संचालन से केवल दो वर्ष में ही श्रीमहाराज का मन्दिर बनकर पूर्ण हो गया। इस मन्दिर के निर्माण में मात्र ४०,००० रुपए खर्च हुए थे। इसे श्रीरामकृष्ण के शिष्य नवगोपाल घोष के मध्यम पुत्र श्रीमहाराज के शिष्य श्याम घोष ने दिए थे।[१] स्वामी विरजानन्द जी की जीवनी से प्राप्त होता है कि – विरजानन्द जी उस समय श्यामलाताल में थे। पूजनीय महापुरुष महाराज मठ और मिशन के नए अध्यक्ष से सूचना मिली कि राजा महाराज के शिष्य श्याम बाबू ने समाधि-मन्दिर के लिये ४०,००० रु. दिए थे।[२]

मन्दिर की लम्बाई चौड़ाई ३२ फुट ६ इंच, उँचाई

३०-३५ फुट, गर्भ-मन्दिर के चारों ओर परिक्रमा पथ ८ फुट। यह सफेद पत्थर का बना है। गर्भ मन्दिर की माप लम्बाई, चौड़ाई में लगभग २३ फुट है। मन्दिर दो-मंजिला है। गर्भ मन्दिर के ऊपर प्रधान गुम्बद है। परिक्रमा के अन्तिम छोर में स्तम्भ नक्काशी युक्त मेहराब से जुड़ा है। चारों ओर ५-५ मेहराब हैं। कुल मेहराब की संख्या २० है। मन्दिर का प्रधान गुम्बद छोड़कर चार कोने में एक ही आकार के चार तुलनात्मक छोटे गुम्बद हैं। प्रधान गुम्बद और दूसरे गुम्बद के मध्य चार और ढाल युक्त चार छत जैसे मन्दिर के चार ढाल युक्त छत हैं। प्रत्येक गुम्बद के ऊपरी भाग में अमलक, कलश और विष्णु-चक्र स्थापित है। मुख्य द्वार के अतिरिक्त उत्तर और दक्षिण में भी दो द्वार हैं। गर्भ मन्दिर की फर्श श्वेत पत्थर की है। मन्दिर के अन्दर की दीवार ३ फुट, ६ इंच ऊँची पत्थर की बनी है। ६ फुट x २ फुट ३ इंच एक वेदी के ऊपर और एक ३ फुट ६ इंच x १फुट ६ इंच वेदी बनी है। उसके ऊपर ब्रह्मानन्दजी की श्वेत पत्थर की मूर्ति स्थापित है। दूसरी मंजिल में श्रीमहाराज का शयन-कक्ष और उनके द्वारा व्यवहार की गई वस्तुएँ संरक्षित हैं। मन्दिर के मध्य सिंहासन में बहुत वर्ष पहले से पूजित अष्टधातु से निर्मित बाल गोपाल की मूर्ति है।

ब्रह्मानन्द-मन्दिर की स्थापना

स्वामी ब्रह्मानन्द जी 'श्रीमहाराज' के मन्दिर का उद्घाटन रामकृष्ण संघ के परमाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने ७ फरवरी, १९२४ को किया था। उस दिन स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की पावन जन्मतिथि भी थी। श्रीमहाराजजी की मूर्ति को देखकर महापुरुष महाराज ने कहा था – ''मूर्ति इतनी सुन्दर है कि देखकर लगता है, मानो महाराज जीवित बैठे हों।'' मुख्य मन्दिर की दूसरी ओर विष्णु-चक्र स्थापित है। मुख्य मन्दिर की दूसरी मंजिल में श्रीमहाराज के द्वारा व्यवहृत वस्तुएँ संरक्षित हैं। मन्दिर-प्रतिष्ठा के दिन से ही इस मन्दिर में श्रीमहाराज की नित्य पूजा भी हो रही है। दिन भर पूजा-पाठ, भजन, कीर्तन से मठ प्रागंण गुंजायमान था। सन्ध्या के बाद मठवासी साधुओं के द्वारा मन्दिर में 'रामनाम-संकीर्तन' किया गया, जिसे ब्रह्मानन्द जी महाराज द्वारा आरम्भ किया गया था। श्रीमहाराज के मन्दिर को प्रतिष्ठित कर महापुरुष महाराज अत्यन्त तृप्त होकर बोले – ''महाराज के देहावसान के बाद लगता था, मानो मठ शून्य हो गया। मठ की आध्यात्मिकता, यहाँ तक कि पेड़-पौधे भी सूख रहे थे। अब महाराज मठ में रहेंगे, मठ फिर से जीवन्त हो जाएगा। जो लोग मन्दिर में महाराज के दर्शन करेंगे, उनको महाराज आशीर्वाद देंगे और वे मन्दिर में न बैठकर हम लोगों की देखभाल करेंगे। महाराज के न रहने से क्या मठ दृष्टिनन्दन होगा?''[३] श्रीमहाराज के मन्दिर-स्थापना महोत्सव के दिन लगभग दो हजार भक्तों का समागम हुआ और सभी प्रसाद पाकर धन्य हुए।[४] प्रत्यक्षदर्शी स्वामी ज्ञानानन्द की स्मृति के अनुसार – ''राजा महाराज के मन्दिर का स्थापनोत्सव था। पूरा दिन मठ-प्रांगण आनन्दमय था। साधु-ब्रह्मचारी सभी कार्य में व्यस्त थे। कितना पूजा-पाठ, हवन-यज्ञ, भजन, कीर्तन हुआ ! असंख्य लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया।''[५] कथामृतकार श्री'म' घर में अस्वस्थ होने के कारण कार्यक्रम में अनुपस्थित थे। कुछ भक्तों को उन्होंने भेजा था। स्वामी नित्यात्मानन्द जी लिखते हैं – ''७ फरवरी को बेलूड़ मठ में ब्रह्मानन्द मन्दिर प्रतिष्ठा उत्सव आयोजित। उसमें भक्तगण ने दिनभर सेवा किया। वे लोग रात्री में मठ में ही रह गए।''[६]

उस दिन मठ में उपस्थित होकर स्वयं स्वामी सारदानन्द जी महाराज की सुव्यवस्था से मन्दिर-प्रतिष्ठा-उत्सव सुसम्पन्न हुआ था। मन्दिर-प्रतिष्ठा के पूजक थे स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी। श्रीमहाराज के मन्दिर के प्रथम पुजारी वसन्त महाराज थे। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. ब्रह्मानन्द चरित, पृ. २१५ **२.** अतीतेर स्मृति, पृ. २१७-१८ **३.** शिवानन्द स्मृति संग्रह, खण्ड-३, पृ. ४१२ **४.** उद्बोधन, २६ वर्ष, फागुन, पृ. १२८ **५.** शिवानन्द स्मृति संग्रह, खण्ड-१, पृ. २१२ **६.** श्री'म' दर्शन–स्वामी नित्यात्मानन्द, खण्ड-३, पृ. ३०८

तुम लोगों में आत्मविश्वास नहीं है। साधनापथ में पुरुषार्थ की आवश्यकता है। कुछ करो, कम से कम चार वर्ष तक करो तो सही। यदि कुछ न हो, तो मेरे गाल पर एक चाँटा मारना। तम और रज को लाँघ सत्त्व में न जा सकने से जप-ध्यान कुछ भी नहीं होता। फिर सत्त्व के भी परे चले जाना होगा। ऐसे स्थान में जाना होगा, जहाँ से फिर वापस न आना पड़े। मनुष्य-जन्म कितना दुर्लभ है ! अन्य प्राणियों को ज्ञान-लाभ नहीं होता। केवल मनुष्य-जन्म में ही भगवान-लाभ होता है और वही करना भी होगा।

– स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

स्वामी ब्रह्मानन्द जयन्ती विशेष

स्वामी ब्रह्मानन्द और भुवनेश्वर

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

श्रीरामकृष्ण देव कहा करते थे, ''मैं जगन्माता से कहा करता – 'माँ! इच्छा होती है कि एक शुद्ध-सत्त्व, त्यागी भक्त-बालक मेरे पास सर्वदा रहे।' एक दिन देखा, माँ ने एक बालक लाकर मेरी गोद में बैठा दिया और कहा – 'यह रहा तुम्हारा पुत्र।' मैं तो काँप उठा। माँ ने मेरा मनोभाव भाँपकर हँसते हुए कहा – 'साधारण सांसारिक रूप से पुत्र नहीं, यह त्यागी मानसपुत्र है।' राखाल के आते ही मैं पहचान गया कि यह वही है।'' श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, 'राखाल मेरा पुत्र है – मानसपुत्र।' वही राखाल भविष्य में स्वामी ब्रह्मानन्द या महाराज या राजा महाराज के नाम से रामकृष्ण संघ में प्रसिद्ध हुये।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

संक्षिप्त जीवनी

राखाल का जन्म २१ जनवरी, १८६३ ई. में कलकत्ता के पास बसिरहाट के निकट शिकराकुलीन ग्राम में हुआ था। उनका पूर्व का नाम राखालचन्द्र घोष था। उनके पिता आनन्दमोहन घोष एक सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होंने राखाल के लिए अपने घर के निकट ही एक विद्यालय की स्थापना कर उसमें उसका नामांकन करा दिया। पाठशाला के बाद अंग्रेजी शिक्षा हेतु पिता उन्हें कलकत्ता लाये। वहाँ उनकी भेंट नरेन्द्रनाथ (भावी विवेकानन्द) से हुई। किशोरावस्था में ही पिता ने राखाल का विवाह कोन्नगर के विख्यात श्रीरामकृष्णपदाश्रित मित्र-परिवार में करा दिया। राखाल के ज्येष्ठ साले मनोमोहन अपने बहनोई की भगवद्-भक्ति को देख बहुत ही आनन्दित हुए और एक दिन उन्हें श्रीरामकृष्ण के पास ले आये। १८८१ ई. में श्रीरामकृष्ण के साथ राखालचन्द्र की प्रथम भेंट हुई। पिता की अनुमति से राखाल श्रीरामकृष्ण के पास रहने लगे। १८८४ ई. में राखाल अस्वस्थ हो गये, तब वे वायुपरिवर्तन के लिए वृन्दावन गये तथा कुछ माह के बाद वे कलकत्ता लौट आये। १८८६ ई. श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के उपरान्त राखाल का हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा। वराहनगर में मठ के प्रतिष्ठित हो जाने पर जनवरी, १८८७ में श्रीठाकुर की पादुका के सम्मुख विरजा होम का अनुष्ठान करके ठाकुर की त्यागी-सन्तानों ने आनुष्ठानिक रूप से वैदिक संन्यास ग्रहण किया। राखाल का संन्यास-नाम हुआ स्वामी ब्रह्मानन्द। नवम्बर, १८८८ में श्रीमाँ सारदा देवी के साथ वे और तुरीयानन्दजी पुरीधाम जाकर तपस्या करते रहे। दिसम्बर, १८८९ में वे तपस्या करने के लिए बैद्यनाथ धाम, काशी होते हुए ओंकारनाथ आये। वहाँ से पञ्चवटी (नासिक) जाकर उन्होंने तीन दिन निवास किया। वहाँ से बम्बई गए और मुम्बादेवी के मन्दिर के बगल में एक घर में आठ दिन निर्जन वास किया। वहाँ से वे द्वारका, बेटद्वारका, पोरबन्दर, जूनागढ़, गिरनार पर्वत, अहमदाबाद, पुष्कर, हरिद्वार, मेरठ, दिल्ली, गोपीनाथपुर, कांगड़ा, बैजनाथ, पठानकोट, गुजरानवाला, लाहौर, मान्टगुमरी, मुलतान, साधुबेला, कराची, बम्बई, आबू, अजमेर, जयपुर, वृन्दावन, अयोध्या और लखनऊ की यात्रा कर जनवरी, १८९५ में कलकत्ता वापस आये।

विश्वविजयी बनकर स्वामी विवेकानन्द ने कलकत्ता वापस आकर रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। ब्रह्मानन्द जी महाराज उसका परिचालन करने लगे। बाद में सन् १८९९ ई. में स्वामीजी द्वारा बेलूड़ मठ प्रतिष्ठित हुआ। महाराज कार्यकारिणी सभा के अध्यक्ष हुए। श्रीरामकृष्ण कहते थे,

'राखाल एक राज्य चला सकता है।' १९०१ में स्वामीजी की इच्छा के अनुसार महाराज के नेतृत्व में बेलूड़ मठ में पहली बार दुर्गापूजा प्रतिमा में आयोजित हुई। बाद में उन्होंने कनखल तथा मद्रास में भी पूजा प्रारम्भ कराई। स्वामीजी के लीलासंवरण के बाद संघनायक का गुरुदायित्व महाराज को वहन करना पड़ा। सन् १९०३ में वे काशी, हरिद्वार, कनखल, वृन्दावन, प्रयागराज और विन्ध्याचल की तीर्थयात्रा कर बेलूड़ मठ वापस आये।

महाराज पुरी और भुवनेश्वर प्रायः ही जाते रहते थे। १९१८ ई. में महाराज ने भुवनेश्वर मठ की प्रतिष्ठा की। इस शिवक्षेत्र गुप्त-वाराणसी में मठ स्थापना का उद्देश्य था – संन्यासी-ब्रह्मचारीगण साधन-भजन करें। वे कहते, 'लड़के लोग साधन-भजन करेंगे, मैं देखकर आनन्दित होऊँगा।' उनका मन सदा इस बात को लेकर व्याकुल रहता कि कैसे सब लोग साधना की अतल गहराई में डूबकर आध्यात्मिक तत्त्व के माधुर्यमय रसास्वादन में सक्षम हों। महाराज को देखने पर लगता था कि वे सर्वदा ही भावराज्य में विचरण कर रहे हैं – हँस रहे हैं, खेल रहे हैं, बात कर रहे हैं, कर्म कर रहे हैं, किन्तु मन सदा ही अन्तर्मुखी, निर्विकार और आसक्तिशून्य है, दृष्टि मानो शून्य में बँधी है, मानो पक्षिणी अपना अण्डा से रही हो। श्रीरामकृष्ण कहते, 'अद्वैत ज्ञान को आँचल में बाँधकर जो इच्छा हो करो।' इस वाणी का यथार्थ तात्पर्य महाराज को देखने से स्पष्ट रूप से अनुभव होता था। मठ-मिशन के कार्य में निरन्तर संलग्न रहने पर भी स्वामी ब्रह्मानन्द अहर्निश ब्रह्मानन्द में डूबे रहते थे।

लगभग पचीस वर्ष तक मठ और मिशन का परिचालन करते-करते २४ मार्च, १९२२ को वे अचानक विषूचिका रोग से ग्रस्त हो गये। स्थिर, धीर, शान्तभाव से आठ दिन रोगयन्त्रणा भोगने के बाद बहुमूत्र रोग का सूत्रपात हुआ। इस समय वे कलकत्ता के 'बलराम मन्दिर' में निवास कर रहे थे। डॉक्टरों एवं वैद्यों ने उनके जीवन की आशा त्याग दी। ८ अप्रैल को रात में एकत्रित साधु-ब्रह्मचारियों एवं भक्तों को स्नेह से पास बुलाकर उन्होंने एक-एक करके सबको आशीर्वाद दिया। उन लोगों के मुख पर निराशा का भाव देख उन्होंने कहा, 'घबड़ाना मत। ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है।' उसके बाद गुरुभाइयों से विदा लेते-लेते उनका मन सहसा एक अनजान राज्य में दौड़ गया। वे कहने लगे, 'रामकृष्ण का कृष्ण चाहिए। ॐ विष्णु, ॐ विष्णु, ॐ विष्णु! कृष्ण! आये हो? हमारे ये कृष्ण – कष्ट के कृष्ण नहीं, ये गोपों के कृष्ण हैं, कमल के कृष्ण हैं!' १० अप्रैल, १९२२ को वे महासमाधि में लीन हुये।

ओडिशा

ओडिशा बंगाल की खाड़ी के किनारे बसा भारत का एक तटवर्ती राज्य है। यह राज्य उत्कल या कलिंग के नाम से जाना जाता था। इस राज्य का इतिहास ३,००० साल से भी अधिक पुराना है। श्रीक्षेत्र जगन्नाथपुरी का जगन्नाथ मन्दिर, चिल्का झील, कोणार्क का सूर्य मन्दिर, भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर और कटक का बाराबाती किला ओडिशा के मुख्य आकर्षण हैं।

साधुसम्प्रदाय तथा भक्तों के लिए वाराणसी, प्रयाग, हरिद्वार और वृन्दावन जैसे तीर्थ स्थानों को हमेशा ही प्रमुख स्थान मिला है। इन स्थानों के साथ कई पौराणिक कहानियाँ भी जुड़ी हुई हैं। यद्यपि ओडिशा अनगिनत मन्दिरों और कई ऐतिहासिक तथा प्राकृतिक स्थानों से भरा पड़ा हैं, लेकिन यातायात के साधनों के अभाव में इसे उतनी प्रमुखता नहीं मिल सकी। बौद्ध धर्म और जैन धर्म यहाँ फले-फूले तथा उसके बाद शैव एवं वैष्णव सम्प्रदायों का यहाँ पर वर्चस्व रहा। श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीरामकृष्ण परमहंस, श्रीमाँ सारदा देवी और उनके शिष्यों की जीवनी पढ़ने पर हमें ओडिशा के इन स्थानों का आध्यात्मिक महत्त्व ज्ञात होता है। श्रीमाँ सारदा देवी तथा श्रीरामकृष्ण के कई शिष्यों ने ओडिशा में बहुत समय बिताया तथा साधना की है। कईयों को यहाँ भगवान जगन्नाथ तथा श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन हुए हैं। इन महानुभावों के जीवन का अनुशीलन करने से हमें आध्यात्मिक चेतना तथा भक्ति के साथ-साथ इन स्थानों की तीर्थयात्रा करने का सही उद्देश्य प्राप्त होता है।

ओडिशा में स्वामी ब्रह्मानन्द

कहते हैं – 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि'। जब भी सन्त या महापुरुष तीर्थों में जाते हैं, तब उन स्थानों की आध्यात्मिक शक्ति तथा महिमा अधिकाधिक बढ़ जाती है। एक बार श्रीरामकृष्ण ने राखाल को गया के बदले जगन्नाथपुरी की तीर्थ-यात्रा पर जाने को कहा था, क्योंकि गया जाने से राखाल अनन्त में विलीन हो सकते हैं और भौतिक जगत में वापस नहीं लौट पायेंगे। श्रीरामकृष्ण के मानस-पुत्र ओडिशा में कुल तेरह बार पधारे थे।

पुरी में स्वामी ब्रह्मानन्द शशि-निकेतन में रहते थे, जो ठाकुर के भक्त बलराम बोस की साधना कुटी थी। भगवान जगन्नाथ का पवित्र मन्दिर, स्वास्थ्यप्रद जलवायु और समुद्र तट का मनोरम दृश्य उन्हें उच्च आध्यात्मिक भावावेश में रखता था। मन्दिर के गर्भगृह में ब्रह्मानन्द को भगवान जगन्नाथ, बलराम तथा देवी सुभद्रा के दर्शन करते-करते प्राय: भावावेश होता था। एक दिन उन्होंने इन देवताओं के स्थान पर एक ग्वाले को देखा। सम्भवत: उन्होंने अपने वास्तविक स्वरूप, श्रीकृष्ण के शाश्वत सहचर के रूप में देखा था। श्रीजगन्नाथ रथयात्रा के समय वे प्रथा के अनुसार रथ को कुछ दूरी तक खींचतें। उन्हें पुरी में सर्वव्यापी चैतन्य का अनुभव होता। इसलिए उन्होंने पुरी के चक्रतीर्थ में रामकृष्ण मठ की स्थापना की थी। ठाकुर के भक्त बलराम बोस के एकलौते पुत्र रामकृष्ण बाबू राजा महाराज के भक्त थे। पुरी मठ के लिए उन्होंने जमीन दान में दी थी।[१]

सभी तीर्थ स्थानों में से उन्हें वाराणसी, वृन्दावन, पुरी और हरिद्वार सबसे अधिक प्रिय थे।[२] जब भी उन्हें सुअवसर मिलता, वे अपने इन चार प्रिय पवित्र स्थानों में से किसी एक में साधना करते। वे कहते, 'प्रत्येक स्थान का अपना समय होता है, जब वह आध्यात्मिक साधना के लिए अनुकूल होता है। वृन्दावन में शुभ समय मध्यरात्रि है; वाराणसी में सुबह ३ बजे से भोर तक; पुरी में दोपहर; भुवनेश्वर और बेलूड़ मठ में सुबह ४ बजे, लेकिन भद्रक (कोठार-बलराम बोस की जमींदारी) में वह सबसे अलग दोपहर २ से ४ बजे तक है।'[३] स्वामी ब्रह्मानन्द ने कई बार पुरी की तीर्थयात्रा की। वर्ष १८८८ में अगस्त के अन्त से नवम्बर तक लगभग ४ महीने, १९०४ में नवम्बर और दिसम्बर में २ महीने, १९०६ में जून से दिसम्बर तक ७ महीने, १९०७-१९०८ में मई से जनवरी तक ९ महीने, १९०८ में जून से अक्तूबर तक ४ महीने, १९०९-१९१० में जून से फरवरी तक ९ महीने, १९१० में जून से नवम्बर तक ६ महीने, १९११ में मई से दिसम्बर तक ७ महीने, १९१५ में अप्रैल से दिसम्बर तक ९ महीने, १९१७ में मई से नवम्बर तक ६ महीने और १९१९ में कुछ दिन और १९२० में २ सप्ताह तक। ओडिशा की उनकी अन्तिम यात्रा अप्रैल, १९२१ में हुई थी। उस यात्रा-काल में वे जनवरी १९२२ तक दस महीने भुवनेश्वर में रहे।[४]

पहली बार १८८८ में महाराज श्रीमाँ सारदा देवी तथा अन्य गुरुभाइयों के साथ पुरी आये थे।[५-६] १९०४ में वे टायफाइड (आंत्र ज्वर) से ग्रस्त होकर स्वास्थ लाभ के लिए पुरी आये थे। प्रतिदिन जगन्नाथ दर्शन तथा महाप्रसाद ग्रहण से उनको स्वास्थ लाभ हुआ था।[७-१०] सन् १९०६ में महाराज स्वामी प्रेमानन्द को साथ ले पुरी पधारे। तत्पश्चात् उन्हें मिलने स्वामी शिवानन्द, अखण्डानन्द, अभेदानन्द, रामकृष्णानन्द तथा निरंजनानन्द भी पुरी आये। इस समय इतने गुरुभाइयों का मानो आनन्द-मेला-सा लगा था।[११-१२] वे फिर ६ मई, १९०७ को पुरी आये तथा २६ जनवरी, १९०८ को भद्रक तथा कोठार होते हुए बेलूड़ मठ पहुँचे। भद्रक में तब कॉलरा (हैजा) की महामारी का प्रकोप जारी था। तब महाराज ने भक्तों को इस महामारी से रक्षा के लिए स्वच्छता आदि नियमों का पालन करने को कहा था।[१३] २१ जून, १९०८ को वे रथयात्रा के पूर्व पुरी आये तथा स्वामी रामकृष्णानन्द के साथ २७ अक्तूबर, १९०८ को मद्रास रवाना हुए। ६ जून, १९०९ को वे कोठार पहुँचे और अगले ९ महीने वे या तो कोठार में रहे या पुरी में। ३० मई, १९१० को वे पुन: पुरी आये तथा वहाँ छह मास रहे। उस समय भुवनेश्वर में भीषण अग्निकाण्ड हुआ था। रामकृष्ण संघ के संन्यासियों ने वहाँ राहत-कार्य किया था। इस कार्य के लिए सहायता हेतु महाराज ने निवेदन भी लिखा था।[१४] महाराज जो नामरामायण (श्रीरामनाम-संकीर्तन) दक्षिण भारत से लाये थे, उसे सर्वप्रथम पुरी में गाया गया था।[१५] २२ मई, १९११ को वे हावड़ा स्टेशन से पुरी आये। २० दिसम्बर, १९११ को वे स्वामी तुरीयानन्द के साथ क्षीरचोरा-गोपीनाथ के दर्शन हेतु गये और अगले दिन कलकत्ता लौटे।[१६-२२] मई, १९१५ में रथयात्रा के पूर्व महाराज पुरी आये। स्वामी सारदानन्द तथा स्वामी प्रेमानन्द भी पुरी आये। वे सभी बड़े आनन्द तथा उत्साह से रथयात्रा में सम्मिलित हुए। कुछ दिन बाद वे भद्रक गये।[२३] ११ मई, १९१७ को वे दक्षिण भारत की यात्रा कर मद्रास से पुरी लौटे। कुछ दिन बाद स्वामी सारदानन्द तथा स्वामी तुरीयानन्द भी पुरी आये। २१ जून, १९१७ को वे सभी पुँटिया की महारानी द्वारा पुरी में नवनिर्मित मन्दिर देखने गये। स्नान-यात्रा के दिन महाराज तथा हरि महाराज पुरी का जगन्नाथ मन्दिर उत्सव देखने गये तथा रात्रि को महाप्रसाद भी ग्रहण किया। वे फिर नवयौवन तथा रथयात्रा उत्सव में भी सम्मिलित हुए। उन्होंने थोड़ी दूरी तक रथ को भी खींचा। महाराज उलटा रथ उत्सव में भी सम्मिलित हुए थे।[२४-२७]

भुवनेश्वर में मठ की स्थापना

सन् १९१७ में पुरी से वापस आते समय स्वामी ब्रह्मानन्द विख्यात लिंगराज शिव के दर्शन हेतु भुवनेश्वर पधारे थे। वहाँ वे तीन दिन रहे और उन्होंने वहाँ के अद्भुत आध्यात्मिक वातावरण का अनुभव किया। इसलिये उन्होंने भुवनेश्वर में मठ की स्थापना हेतु एक भूखण्ड खरीदने की व्यवस्था की। उसी स्थान पर ३१ अक्तूबर, १९१९ को नवनिर्मित मठ का समर्पण किया गया। उन्होंने कहा था, 'यह स्थान साधना के लिए बहुत ही अनुकूल है। यह शिव क्षेत्र है, गुप्त वाराणसी। यहाँ अल्प साधना से ही साधक को बहुत अच्छे परिणाम मिल सकते हैं। यह एक स्वास्थ्यवर्धक स्थान है। अन्य मठों में सेवारत साधु-संन्यासी कार्य करने से थक जाने के बाद यहाँ विश्राम करने के साथ-साथ ध्यान-धारणा करने के लिए आ सकते हैं।' उन्होंने गृहस्थ-भक्तों को भुवनेश्वर मठ के आसपास अपने घर बनाकर वहाँ एकान्त में जीवन बिताने को कहा। महाराज स्वास्थ्य प्राप्त करने भुवनेश्वर कई बार आये और नवागत साधुओं को यहाँ एकान्त में प्रशिक्षित किया था। एक दिन उन्होंने श्रीरामकृष्ण के बारे में कहा था, 'ठाकुर का शरीर इतना कोमल था कि एक बार लूची (कुरकुरी तली हुई पूरी) तोड़ते समय उनकी अंगुली लूची की किनार से कट गई थी।' इस पर एक सज्जन ने टिप्पणी की, 'लुची तोड़ते हुए किसी की अंगुली कैसे कट सकती है?' यह सुन महाराज तुरन्त चुप हो गए। अगर कोई उन्हें टोकता, तो वे गम्भीर हो आगे बात नहीं करते। क्रिस्टोफर इशरवुड ने लिखा हैं, 'सुना है कि स्वामी ब्रह्मानन्द इतने निर्भय थे कि उनकी उपस्थिति में किसी को भय नहीं लगता था। एक बार जब वे भुवनेश्वर के जंगल में दो भक्तों के साथ टहल रहे थे, तो एक तेंदुआ अचानक उनकी ओर आया। उसे देख महाराज शान्ति से तब तक स्थिर खड़े रहे, जब तक वह चला नहीं गया।' स्वामी अखिलानन्द ने उस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है – एक दिन जब अखिलानन्द और उनके एक गुरुभाई महाराज के साथ जंगल में टहल रहे थे, तब अचानक एक बाघ उन्हें दिखाई दिया। वे दोनों अपने गुरु महाराज को बाघ से बचाने के लिए उनके सामने कूद पड़े। महाराज उस उम्र में भी शारीरिक रूप से बहुत सक्षम थे, उन्होंने उन दोनों को सामने से एक ओर धकेल दिया और बाघ से केवल दस कदम की दूरी पर जाकर खड़े हो गए। महाराज और बाघ कुछ क्षणों के लिए एक-दूसरे को देखते रहे। थोड़ी देर बाद बाघ पीछे मुड़कर चुपचाप वहाँ से निकल गया। स्वामी अखिलानन्द अमेरिका में अपने व्याख्यानों में इस घटना का उल्लेख किया करते थे और इस घटना के माध्यम से वे पूर्ण विकसित आध्यात्मिक व्यक्ति का प्रेम कितना महान होता है, यह बताते थे। उनका प्रेम न केवल अपने शिष्यों के लिए ही था, अपितु उनका सार्वभौमिक प्रेम मात्र मनुष्यों तक सीमित न रहकर हिंसक पशुओं के लिए भी होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि बाघ ने महाराज का प्रेम सार्वभौमिक और निर्भयता का अनुभव किया और वह उन्हें हानि न पहुँचा कर वहाँ से चला गया।[२८]

भुवनेश्वर मठ, १९३६

महाराज के जीवन का अन्तिम महत्त्वपूर्ण कार्य था ओडिशा के भुवनेश्वर में अपने संरक्षण में एक आश्रम का निर्माण करना। उनका मानना था कि भुवनेश्वर में आध्यात्मिक साधना के लिए अनुकूल वातावरण है और साधक यहाँ शीघ्र प्रगति कर सकता है। उन्होंने देखा था कि रामकृष्ण संघ के कई साधुओं को सेवाकार्य के लिए इतना कठोर परिश्रम करना पड़ता है कि उन्हें साधना के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता। जो साधु साधना के लिए ऋषिकेश या अन्य स्थानों पर जाते हैं, उनका स्वास्थ्य अत्यन्त कठोरता के कारण बिगड़ जाता है। महाराज की इच्छा थी कि एक ऐसा स्थान हो, जहाँ साधुओं की आध्यात्मिक साधना हेतु आवश्यक सुविधाएँ हों। इस योजनानुसार उन्हें अपने संरक्षण में आश्रम का निर्माण कराना था।[२९]

१५ जुलाई, १९१७ को महाराज ने स्वामी शंकरानन्द (अमूल्य महाराज) को भुवनेश्वर जाकर वहाँ आश्रम स्थापित करने हेतु भूमि की खोज करने का कार्य सौंपा। तदनुसार स्वामी शंकरानन्द ने मठ की स्थापना के लिए उपयुक्त ४.४२ एकड़ भूमि खोज निकाली। वह भूमि महाराज को भी पसन्द आई। २६ जुलाई, १९१७ को भूमि खरीदकर उसका पंजीकरण कराया गया। २१ सितम्बर, १९१७ को महाराज ने पुरी में जगन्नाथ महाप्रभु और विमलादेवी को विशेष अन्न-भोग की व्यवस्था कराई और अनेक ब्राह्मणों को भरपेट स्वादिष्ट भोजन कराया। इसके बाद महाराज स्वयं भुवनेश्वर आये और २ से ४ नवम्बर, १९१७ तक सेनेटोरियम में रहे। स्वामी शंकरानन्द उन्हें आश्रम के लिए खरीदी गई भूमि पर ले गए। वह भूमि देखकर महाराज संतुष्ट हुए, जो लिंगराज मन्दिर से बहुत दूर नहीं थी।[३०] समीप की एक भूमि की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा, 'पुराने समय में यहाँ एक विशाल बौद्ध मठ था, जिसके हजारों भिक्षुओं ने निर्वाण प्राप्त किया।'[३१] महाराज ६ नवम्बर, १९१७ की दोपहर को पुरी लौट आए। इस बीच हरि महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। इसलिए ९ नवम्बर, १९१७ को महाराज, हरि महाराज, शरत महाराज और डॉ. कांजीलाल ने पुरी से कलकत्ता के लिए प्रस्थान किया।[३२]

वर्ष १९०८ में स्वामी शंकरानन्द को राहत-कार्य के लिए स्वामी सुबोधानन्द के साथ चिलिका भेजा गया था। उनके नि:स्वार्थ सेवाकार्य और स्थानीय लोगों के साथ उनके सहयोग से ओडिशा और वहाँ के निष्ठावान लोगों के प्रति उनके मन में जिस अगाध श्रद्धा का उद्भव हुआ था, उसकी नींव यहाँ रखी गयी। स्वामी शंकरानन्द ने अपने साधु-जीवन का अधिकांश समय ओडिशा के इसी क्षेत्र में बिताया था। वे कई बार महाराज के साथ यहाँ आये थे। भुवनेश्वर-मठ-निर्माण के अपने उत्कृष्ट कार्य के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था, 'सन् १९१७-१९१८ में भवन-निर्माण का कार्य आरम्भ किया गया और महाराज ने मुझे इस कार्य का दायित्व सौपा था।' शंकरानन्द भुवनेश्वर में केदार-गौरी मन्दिर परिसर के एक छोटे-से किराए के मकान में रहा करते और अपना खाना स्वयं पकाते। सुबह आठ बजे से पहले अपना खानपान निपटाकर वे सीधे मठ के निर्माण-स्थल पर चले जाते। उन दिनों भुवनेश्वर में कुशल राजमिस्त्री मिलना कठिन था, इसलिए उन्हें स्थानीय लड़कों से काम चलाना पड़ा। उन लोगों को रहने के लिए वहाँ अस्थायी झोपड़ियाँ बनाई गईं। मठ का निर्माण करते समय उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। निर्माण-कार्य का निरीक्षण करने हेतु राजा महाराज स्वयं बेलूड़ मठ से दो बार भुवनेश्वर आए और शरत-कुटीर में रुके। प्रतिदिन एक-दो बार वे निर्माण स्थल पर आते। खरीदी गई भूमि घने जंगल से घिरी एक सुनसान स्थान पर थी। बाघ, तेंदुए और भालू जैसे जंगली जानवर बहुत थे, जहरीले साँप और बिच्छूओं की तो बात ही क्या करें ![३३]

जब अमूल्य महाराज भुवनेश्वर-मठ का निर्माण कर रहे थे, तब महाराज ने उन्हें मौखिक रूप से स्थापत्य कला आदि के बारे में निर्देश दिया। उन्होंने गोकुल बाबू से कहा था, 'भुवनेश्वर-मठ के मुख्य द्वार के ऊपर एक सिंह की मूर्ति होगी। कृपया हमारे लिए उस सिंह का एक नमूना बनाकर दीजिए।' भुवनेश्वर-मठ के मुख्यद्वार पर बना सिंह गोकुलबाबू द्वारा बनाए गए नमूने की प्रतिकृति है।

स्वामी ब्रह्मानन्द उस समय भुवनेश्वर-मठ के निर्माण कार्य को पूरा करने में व्यस्त रहे। इस कार्य के लिए उन्हें धन की आवश्यकता रहती, किन्तु कई बार कोई यदि धन देने का प्रस्ताव देता, तो वे कभी-कभी मना कर देते। यदि कोई एक निश्चित राशि देता, तो वे उसका केवल एक भाग लेते, शेष दानदाता को वापस कर देते। वे कहते कि कभी-कभी लोगों को विभिन्न प्रकार से ठग कर या उन्हें कष्ट पहुँचाकर धन कमाया जाता है। ऐसे लोगों के श्राप इस धन पर होते हैं। स्वामी ब्रह्मानन्द कहते कि 'गृहस्थ कठिन परिश्रम से अर्जित धन देकर त्यागी बन रहे हैं और उनका धन लेकर साधु भोग-विलास में आसक्त हो रहे हैं।'[३४]

स्वामी ब्रह्मानन्द के भुवनेश्वर-मठ की स्थापना का प्रयोजन था कि रामकृष्ण संघ के साधु वहाँ विश्राम तथा साधना के लिए जा सकें। प्राय: वे साधुओं से बड़े ही आत्मीयता से पूछते, 'आप लोग भुवनेश्वर कब जा रहे हो?' एक बार किसी ने उनसे पूछा, 'आपने भुवनेश्वर-मठ का मुख्य द्वार इतना विशाल और ऊँचा क्यों बनवाया है?' मुस्कुराते हुए महाराज ने उत्तर दिया, 'अभी मैं संघ का ऐसा अध्यक्ष हूँ, जिसके पास आज बहुत कम वित्तीय संसाधन हैं। लेकिन भविष्य में हमारे संघ के अध्यक्ष हाथी पर बैठकर बड़ी शान से इस मठ में प्रवेश करेंगे। इसलिए मैं चाहता था कि द्वार ऐसा ही बने।' परन्तु स्वामी निर्वाणानन्द के अनुसार महाराज

ने मुस्कुराते हुए कहा था, 'भविष्य में यह स्थान जागृत होगा तथा भुवनेश्वर ओडिशा के गतिविधियों का केन्द्र-बिन्दु होगा।'[३५]

भुवनेश्वर-मठ घने जंगल से घिरा हुआ था। एक दिन मठ के एक बड़े कुएँ में एक बड़ा भालू गिर गया। कई लोगों की मदद से उसे जंजीर और रस्सी से कुएँ से बाहर निकाला गया। जैसे ही उसे कुएँ से बाहर निकाला गया, वह जंगल की ओर भाग गया। एक दिन एक परिचित शिकारी महाराज के पास आया और बोला, 'इस जंगल का एक बाघ लोगों को परेशान कर रहा है। मैं उसे मारने जा रहा हूँ। कृपया मुझे सफलता के लिए आशीर्वाद दें।' महाराज गंभीर हो गए और बोले, 'मैं तुम्हें एक पशु को मारने के लिए आशीर्वाद नहीं दे सकता, लेकिन मैं तुम्हारी सुरक्षा के लिए श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना अवश्य करूँगा।' सभी क्षेत्रों में उनकी सोच सकारात्मक थी।[३६] **(क्रमशः)**

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** गॉड लिभ्ड विथ देम – स्वामी चेतनानन्द पृष्ठ-१०८ **२.** दी अपोस्टल ऑफ श्रीरामकृष्ण, ले.-स्वामी गम्भीरानन्द पृ.१०४ **३.** गॉड लिभ्ड विथ देम – स्वामी चेतनानन्द पृ.९८ और स्वामी ब्रह्मानन्देर स्मृतिकथा - स्वामी चेतनानन्द पृ.-१५५ **४.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित, लेखक-स्वामी प्रभानन्द, पृ.-२६८ **५.** स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली) प्रकाशक-उद्बोधन कार्यालय, संस्करण-२ पृ.-३०३-३११ और होली मदर श्रीसारदा देवी (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी गम्भीरानन्द, पृ.-१६५ **६.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) – स्वामी प्रभानन्द पृ-८६ **७.** वही, पृष्ठ-१८१ **८.** द इटरनल कम्पेनियन (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी यतीश्वरानन्द, स्वामी प्रभानन्द पृष्ठ-११३ **९.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-१८१ **१०.** स्वामी ब्रह्मानन्द (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी अशोकानन्द पृष्ठ-२५ **११.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-३७१ और श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका (मराठी) लेखक-स्वामी गम्भीरानन्द खण्ड-१ पृष्ठ-७८ **१२.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द (अँग्रजी) लेखक-ब्र.अक्षयचैतन्य अनुवादक-स्वामी भास्करानन्द पृ-१-२ **१३.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृ-३७२ और श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका (मराठी) लेखक-स्वामी गम्भीरानन्द खण्ड-१ पृष्ठ-७८ **१४.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित पृष्ठ-३७२-३७३, स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली) प्रकाशक-उद्बोधन कार्यालय संस्करण-२ पृष्ठ-३०७, हिस्ट्री ऑफ रामकृष्ण मठ एण्ड रामकृष्ण मिशन (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी गम्भीरानन्द पृष्ठ-१७६, प्रबुद्ध भारत (अंग्रेजी मासिक) मई-१९१० पृष्ठ-९८ **१५.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द (अँग्रेजी) पृष्ठ-४-५ **१६.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-३७४ **१७.** श्रीशंकरानन्देर गल्प कथा (बंगाली) प्रकाशक- श्री समर साधन चौधरी बामुनमुडा पृष्ठ-३२ **१८.** स्वामी ब्रह्मानन्देर स्मृतिकथा (बंगाली) लेखक-स्वामी चेतनानन्द पृष्ठ-९०, स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली) प्रकाशक-उद्बोधन कार्यालय संस्करण-२ पृष्ठ-३०५ **१९.** वही, पृष्ठ-४३ **२०.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (बंगाली) लेखक-स्वामी प्रभानन्द पृष्ठ-२७९, स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली) प्रकाशक-उद्बोधन कार्यालय संस्करण-२ पृष्ठ-३०५ **२१.** स्वामी ब्रह्मानन्देर स्मृतिकथा (बंगाली) पृष्ठ-१९१-१९२ **२२.** श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका (मराठी) लेखक-स्वामी गम्भीरानन्द खण्ड-१ पृष्ठ-८३ और हिस्ट्री ऑफ रामकृष्ण मठ एण्ड रामकृष्ण मिशन (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी गम्भीरानन्द पृष्ठ-१९३ और रामकृष्ण मिशन पुरी की वेबसाइट http://rkmissionpuri.org/index.html **२३.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-३७५-३७६, स्वामी सारदानन्द चरित (हिन्दी) लेखक-स्वामी प्रभानन्द पृष्ठ-२१३ फुटनोट **२४.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-३७८, स्वामी ब्रह्मानन्द (बंगाली) प्रकाशक-उद्बोधन कार्यालय संस्करण-२ पृष्ठ-३११, स्वामी तुरीयानन्देर पत्र (बंगाली) प्रकाशक-उद्बोधन कार्यालय पृष्ठ-१९३ **२५.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-२६९ **२६.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द (अँगेजी) पृष्ठ-१००-१०१ **२७.** रियलाईजिंग गॉड (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी प्रभवानन्द पृष्ठ-२५०-२६१, स्वामी प्रेमानन्देर जीवन ओ स्मृति कथा (बंगाली) लेखक-स्वामी चेतनानन्द पृष्ठ-१५८-१५९, स्वामी तुरीयानन्द (बंगाली) लेखक-स्वामी जगदीश्वरानन्द पृ-२३४ **२८.** गॉड लिभ्ड विथ देम (अंग्रेजी) पृष्ठ-१०८-१०९, १२२, रामकृष्ण एण्ड हिज डिसाईपल्स (अंग्रेजी) लेखक- क्रिस्टोफर इशरवुड पृष्ठ-३२९, होली मदर, स्वामीजी एण्ड डायरेक्ट डिसाईपल्स एट मद्रास (अंग्रेजी) प्रकाशक- श्रीरामकृष्ण मठ, मद्रास पृष्ठ-१३३ और स्पिरिच्युअल प्रॅक्टिसेस (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी अखिलानन्द पृष्ठ-४ **२९.** द अपोस्टल्स ऑफ श्रीरामकृष्ण (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी गम्भीरानन्द पृष्ठ-११० **३०.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-३७८ **३१.** स्वामी ब्रह्मानन्द (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी अशोकानन्द पृष्ठ-३६ **३२.** स्वामी ब्रह्मानन्द चरित (हिन्दी) पृष्ठ-३७८ **३३.** स्वामी शंकरानन्द (बंगाली) लेखक-डॉ. विश्वनाथ चक्रवर्ती पृ-७६, ९२-९७ और रामकृष्ण मठ भुवनेश्वर : स्वामी ब्रह्मानन्देर तपोवन (उड़िया) प्रकाशक-रामकृष्ण मठ भुवनेश्वर पृ-३३-३४ **३४.** रेमिनिसेन्सेस ऑफ स्वामी ब्रह्मानन्द (अँग्रेजी) लेखक-ब्र.अक्षयचैतन्य **३५.** वही, पृ-२०७ और स्वामी ब्रह्मानन्द ऐज वी सॉ हिम (अंग्रेजी) लेखक-स्वामी आत्मश्रद्धानन्द पृष्ठ-१५८ **३६.** देबलोकेर कथा (बंगाली) लेखक-स्वामी निर्वाणानन्द पृष्ठ-१११

कविता

श्रीनर्मदा-स्तुति

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

देवि नर्मदे तुम हरती हो, जगजन के कष्टों का भार ।
उनके पापों का क्षय करके, करती सदा त्वरित उद्धार ।।
तेरे जल में नित्य हि पलते, विविध जलचरों की भरमार ।
उन सबका तुम पालन करती, देकर अपना प्रेम अपार ।।
माता तुम सबकी आश्रय हो, तुम ही सबकी प्राणाधार ।
तेरे केवल जलदर्शन से, हो जाते भवसागर पार ।।
श्रेष्ठ तपस्वी साधक ऋषि-मुनि, रहते तेरे तट के पार ।
साधन करते तुमको भजते, देती मुक्ति उन्हें उपहार ।।
सहज कृपा करती तुम माता, माँ तुम हो आनन्द-अगार ।
शिव के जटाजूट से प्रगटी, हरती तुम भवरोगविकार ।।
माँ जो तुमको नित्य हि भजता, होता वह भवभय से पार ।
सकल दुखों से सदा मुक्त हो, पाता ब्रह्मानन्द अपार ।।

रामगीता (५/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

तब आप एक क्रमिक विकास देखते हैं, विश्वामित्र का जीवन मानो यह बताने के लिए है कि इतनी महान सफलता प्राप्त करनेवाला व्यक्ति भी पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं है। आप पाते हैं कि जब वे श्रीराम और लक्ष्मण को लेकर चलते हैं, तो सबसे पहले ताड़का ही सामने आती है। एक क्रम है। मारीच और सुबाहु ताड़का के बेटे हैं, पर भगवान ने इन पर प्रहार बाद में किया। पहले ताड़का पर प्रहार किया। इसका अभिप्राय यह है कि जो इस शोक-दुख का मूल कारण है, उसे तो पहले ही नष्ट किया जाना चाहिए। कारण पर प्रहार, केवल कार्य पर प्रहार नहीं। कार्य लक्षण है, कारण मूल है।

जब ताड़का सामने आती है। अब श्रीराम के धनुष की ओर आप ध्यान दें। भगवान श्रीराम के धनुष का वर्णन कई रूपों में किया गया है। श्रीराम धनुष-बाण धारण करते हैं। यह धनुष-बाण क्या है? इस सम्बन्ध में एक सूत्र आपको लंकाकाण्ड में मिलेगा, जिसमें बताया गया –

लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड।। ६/०

श्रीराम साक्षात् ईश्वर हैं, धनुष साक्षात् काल है। ये जो कई तरह के बाण हैं, ये मास, वर्ष, कल्प हैं। ये बड़ी-बड़ी संख्याएँ आप गणना में पाते हैं, ये ही भगवान के बाण हैं। काल के धनुष पर विभाजित समय का बाण चल रहा है।

एक बहुत सुन्दर संकेत है कि वह बाण चलता है और पुन: लौट आता है। यही तो सत्य है। सोमवार को एक व्यक्ति की मृत्यु हुई, पर वह काल कहाँ गया? अगले सातवाँ दिन फिर सोमवार। वह लौट-लौट कर काल आता है, मानो वह ईश्वर के पास ही रहता है। यहाँ पर संकेत किया गया कि काल कोदण्ड है।

पर दूसरे प्रसंग में इसको दूसरे रूप में बताया गया। वह स्वयं भगवान राम के द्वारा बताया गया। भगवान राम ने संसार-शत्रु को जीतने के लिए, मन को जीतने के लिए जिस धर्म-रथ का वर्णन किया, उसमें जो अलग-अलग साधन हैं, इसका वर्णन शस्त्रों के रूप में किया। आप अगर उसको ध्यान से पढ़ेंगे, तो केवल यह नहीं कि किसी को किसी से जोड़ दिया गया हो। उसके पीछे तत्त्व है। भगवान राम रथ का वर्णन करते हुए कहते हैं –

सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।
बल बिबेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना।। ६/७९/५-७

उन्होंने कहा वैराग्य ढाल है और संतोष कृपाण है। फरसा? बोले, 'दान परसु' दान देना ही फरसा है। शक्ति क्या है? 'बुध सक्ति प्रचंडा'। जो आपका विवेक है, जो आपके जीवन में बन्धुत्व है, वही प्रचण्ड शक्ति है। पर वहाँ धनुष की व्याख्या काल के रूप में ही है। वहाँ धनुष की व्याख्या है – **बर बिग्यान कठिन कोदंडा। ६/७९/८**

भगवान राम ने कहा, विज्ञान ही धनुष है। इस संकेत पर आप गहराई से विचार करें। साधक के लिये यह वर विज्ञान है। मानों आप दान दें, आपके जीवन में संतोष हो, आपके जीवन में विवेक हो, यह तो अच्छा ही है। पर इनके द्वारा, उसको दृष्टान्त के रूप में यों कहें कि परशुराम जी महाराज सहस्त्रार्जुन को मार सकते हैं, पर रावण को नहीं। क्यों? परशुराम जी महाराज का जो शस्त्र है, वह परशु है

और श्रीराम का जो अस्त्र है वह धनुष है। तो आप पढ़ते हैं कि परशु माने – 'दान परसु'। दान ही फरसा है। दान के द्वारा भी समाज की अनेक समस्याओं का समाधान होता है, होना चाहिए। इस युग में तो सबसे अधिक महिमा दान की बताई गई है।

प्रगट चारि पद धर्म के कलि मँहु एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान।। ७/१०३/ख

परशुराम जी महाराज के जीवन में जो परशु है, उसका एक व्यावहारिक पक्ष यह है कि जिस शस्त्र के द्वारा परशुरामजी ने सहस्त्रार्जुन की एक हजार भुजाओं को काट डाला। मैं आशा करता हूँ कि आप उसको समझेंगे। सहस्त्रार्जुन मूर्तिमान लोभ है और रावण मूर्तिमान मोह है। लोभ को उन्होंने जीता। इसका अर्थ है कि लोभ को अगर आप जीतना चाहें, तो दान दीजिए। आपने धन एकत्र किया और उसके बाद आपने बाँट दिया, तो इसका अर्थ क्या हुआ? लोभ छोड़ा। लोभ पर विजय प्राप्त तो दान से होगा, लेकिन लोभ पर विजय प्राप्त करनेवाला जो दान है, वह मोह को नहीं मिटा सकता। यह बड़ी विडम्बना है। बल्कि एक उलटी बात है। उसकी सम्भावना बहुत होती है कि दान देने के बाद आपने कुछ न कुछ लोभ तो छोड़ा, पर अभिमान बढ़ गया – मैं दानी हूँ।

परशुरामजी के व्यक्तित्व को कृपा करके आप जाति से जोड़कर पढ़ने का अभ्यास छोड़ दें। आजकल की विडम्बना यह है कि हर प्रश्न को जाति से जोड़ दिया जाता है। दिल्ली में मैंने परशुरामजी के चरित्र के दूसरे दुर्बल पक्ष की चर्चा की, तो सभा की समाप्ति के बाद एक सज्जन तमतमाते हुए आए। बड़े क्रोध में थे। उन्होंने मुझ पर आरोप लगाया कि तुम ब्राह्मण होकर परशुराम ब्राह्मण की निन्दा करते हो? मैंने कहा, आज तक तो मैंने इस दृष्टि से देखा ही नहीं। रामायण को देखने में मेरे सामने कभी यह दृष्टि नहीं रही कि कौन किस जाति का है? कितनी विडम्बना की दृष्टि है। परशुरामजी की महानता में कोई सन्देह है क्या? पर महानता होते हुए भी अगर वे वह कार्य नहीं कर पाए, जिसे रामराज्य कहते हैं। कोई तो कारण रहा होगा। जब इतने महान योद्धा थे, सहस्त्रार्जुन की हजार भुजायें काट दी, इतने क्षत्रियों का संहार कर दिया। यह सब करने के साथ-साथ दान तो बहुत बड़ा दिया। स्वयं यह वर्णन आता है कि जब प्रभु और परशुरामजी का संवाद हुआ, तो बार-बार भगवान राम कहते थे कि आप तो मेरे लिए वन्दनीय हैं, आप तो ब्राह्मण हैं। अब कैसी विचित्र स्थिति है? स्वयं श्रीराम से कह चुके हैं कि तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ। यह अपनी प्रशंसा ही नहीं, राम पर व्यंग्य भी है। यह जो तुम नया राम नाम लेकर आ गये हो, कहाँ ब्रह्मचारी राम और कहाँ स्वयंवर में आए हुए हो विवाह करनेवाले। तुम्हारा नाम राम हो गया? किसने रख दिया तुम्हारा नाम? उसके साथ-साथ यह भी बता दिया कि

बाल ब्रह्मचारी अति कोही। १/२७१/६

मैं बहुत क्रोधी हूँ। प्रभु मन ही मन हँसे। क्रोध आया, तो इसका अर्थ क्या हुआ? गीता में तो यही लिखा हुआ है, बाप के बिना बेटा कैसे जन्म लेगा? गीता में कहा गया –

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते। २/६२

कामना की पूर्ति में बाधा आने पर क्रोध आता है। मानो वे कहते हैं, मैं बहुत क्रोधी हूँ। कामना का अर्थ केवल कुछ पैसा पाना ही तो नहीं है। अगर किसी के जीवन में काम का सर्वथा अभाव है, तो क्रोध किसी को आ ही नहीं सकता है। परशुरामजी ने परिचय देते हुए कहा कि मैं बहुत क्रोधी हूँ। व्यंग्य था। भगवान श्रीराम ने अभी थोड़ी देर पहले दण्डवत् किया था। परशुरामजी के चरणों की धूल ली थी। पहले तो उनको यह श्रीराम का गुण लगा, पर अब वह कमी लगने लगी। बोले, मैं तुम्हारी तरह झूठा नाटक नहीं करता। कई क्रोधी लोग यही कहकर अपनी प्रशंसा करते हैं, मैं किसी से डरता हूँ क्या? मैं नहीं डरता, जो मन में आता है, वह करता हूँ। कहता है और मगन हो जाता है कि मैं कितना अभय हूँ। पर क्या यह कोई बहुत सर्वोच्च गुण है? भगवान राम बोल रहे हैं, तो लग रहा है कि कोई विनम्र व्यक्ति अत्यन्त नम्रता से कह रहा हो। परशुरामजी कह रहे हैं – **बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही। १/२७१/६**

इस बात को कभी मत भूलना कि मैं क्षत्रियकुल का द्रोही हूँ। सीधा आक्षेप है। तुम क्षत्रिय हो। क्षत्रियवंश में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुमने बहुत बड़ा अपराध किया है। इसलिए जब मुझसे बात करो, तो जरा सोच-समझ कर बोलना। भगवान राम बारम्बार कहते हैं कि ब्राह्मण तो मेरे लिये वन्दनीय है, परम पूज्य है। अब विचित्र बात क्या है कि विप्र शब्द सुनकर भी उनको चिढ़ लगने लगी। क्या? तुम ब्राह्मण कहकर मेरी स्तुति कर रहे हो? वह दान लेनेवाला ब्राह्मण मैं नहीं हूँ। अब मैं तुम्हें बताता हूँ कि मैं कैसा ब्राह्मण हूँ। दान लेनेवाले ब्राह्मणों की वृत्ति तो और है, जो यजमानों से दान लिया करते हैं। मैं कैसा ब्राह्मण हूँ, तुम्हें बतलाता हूँ –

मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही।
चाप स्रुवा सर आहुति जानू।
कोपु मोर अति घोर कृसानू।।
समिधि सेन चतुरंग सुहाई।
महा महीप भये पसु आई।। १/२८२/१-३

उन्होंने कहा, धनुष को स्रुवा, बाण को आहुति, मेरे क्रोध को भयंकर अग्नि जानो। परशुरामजी ने सांगोपांग अस्त्रों का वर्णन किया। चतुरंगिणी सेना सुन्दर समिधाएँ हैं। बड़े-बड़े राजा आकर उसमें बलि के पशु हुये हैं।

मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे।
समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे।। १/२८२/४

उस यज्ञ में मैंने इसी फरसे से काटकर उन क्षत्रियों की बलि चढ़ाई है। ऐसे करोड़ों जप युक्त रणयज्ञ मैंने किये हैं। उसके पश्चात् सब कुछ करने के बाद –

बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही। १/२७१/७

मैंने राज्य पाकर भी कभी सिंहासन पर बैठने की कामना नहीं की। सब दान दे दिया। दान भी एक सद्गुण है। महान सद्गुण है। समाज को उसकी आवश्यकता है। दान आपकी समस्या का थोड़ा समाधान भले ही करे, पर अगर आप यह सोचते हैं कि उससे आपका मोह नष्ट हो जायेगा, तो ऐसा नहीं है। यह सहस्त्रार्जुन लोभ है, हजार भुजावाला लोभ है, जिसमें महान सामर्थ्य है। उसे भले ही उन्होंने परास्त कर दिया, पर मोह रूपी रावण को परास्त करने के लिए आवश्यकता परशु की नहीं, आवश्यकता धनुष की है।

धनुष माने? 'बर बिग्यान'। मोह का विनाश जब होगा, तो विज्ञान से होगा। किसी भी श्रेष्ठ सत्कर्म के द्वारा मोह नष्ट नहीं होता। इसलिए परशुराम जी महाराज का जो कार्य था, उन्होंने लोभ को परास्त किया, अन्याय को दण्डित किया। पर इतना होते हुए भी परशुरामजी ने रामराज्य या ऐसा राज्य नहीं बनाया, जिसके लिए हम कल्पना करें कि ऐसा राज्य होना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि मोह के विनाश के बिना रामराज्य नहीं होगा। उस मोह के विनाश के लिए आवश्यकता है विज्ञान की। भगवान श्रीराम के चरित्र को देखें। श्रीराम के हाथ में भी धनुष है और परशुरामजी के पास भी धनुष था। वही धनुष तो आगे चलकर श्रीराम के पास गया। कितनी सांकेतिक भाषा है। पर वे महत्त्व धनुष को नहीं, परशु को देते हैं। उनकी दृष्टि में दान महत्त्वपूर्ण है, विज्ञान नहीं। तो क्या परशुरामजी विज्ञान को शास्त्रों से, ग्रन्थों से और आवेशावतार होने से नहीं जानते थे? जानते थे, किन्तु उन्होंने उसका प्रयोग नहीं किया। अगर प्रयोग किया होता, तो यह कह ही नहीं सकते थे कि मैं क्षत्रियों का विरोधी हूँ। ज्ञान का अर्थ ही है कि –

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं।
देख ब्रह्म समान सब माहीं।। ३/१४/७

जिसको समस्त प्राणियों में ब्रह्म दिखाई दे रहा है, वह व्यक्ति ज्ञानी है। वह तो उन्होंने स्वीकार ही नहीं किया और कह गये कि मैं तो क्षत्रिय कुल का विरोधी हूँ, द्रोही हूँ। मानो इसका अभिप्राय है कि दो विचारधाराएँ हैं। दान के द्वारा, यज्ञ के द्वारा, सद्गुण के द्वारा समाज अच्छा बन सकता है, कल्याणकारी बन सकता है। इस स्थान पर वे बातें महत्त्व की हैं। किन्तु अगर पूरी तरह से रामराज्य की स्थापना आपको जीवन में करनी है, उसको बाहर प्रतिफलित होते देखना है, तो निश्चित रूप से विज्ञान का आश्रय लेना होगा। भगवान श्रीराम के पास वह धनुष है, जिसे लेकर महर्षि विश्वामित्र के साथ जा रहे हैं। ताड़का सामने दिखाई दे गई। प्रभु ने पूछा – यह कौन है? जानते हुए भी आपने एक शिष्य की भाँति पूछा। महर्षि ने कहा, राम यही वह ताड़का है। यह और इसके पुत्र हमारे यज्ञ को नष्ट करते हैं। श्रीराम ने धनुष पर बाण चढ़ाया और – **एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।**

भगवान ने एक ही बाण से उसके प्राण का हरण कर लिया। क्या श्रीराम की सबसे बड़ी महिमा यही है कि इतने बड़े योद्धा थे कि एक ही बाण में उन्होंने ताड़का को मार दिया। मारने की बात तो अनेक योद्धा करते रहते हैं। रावण भी अनेकों को मार चुका है। अगला वाक्य है –

एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।
दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।। १/२०८/६

भगवान ने ताड़का को अपने में लीन कर लिया। उसके लिए एक ही बाण का प्रयोग किया। आध्यात्मिक भाषा में उसका अर्थ क्या है? क्रोध आता क्यों है? मानस में कहा गया –

क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु द्वैत कि बिनु अज्ञान। ७/१११ ख

अग्यान के बिना द्वैत नहीं है। अद्वैत जो है, मानो सर्वत्र ब्रह्म का दर्शन है। अद्वैत माने जहाँ ब्रह्म को छोड़कर और कुछ नहीं है। द्वैत माने जहाँ हर वस्तु का भेद है। चाहे वह जाति के नाम पर हो, कुल के नाम पर हो, परिवार के नाम पर हो और चाहे परिवार के सदस्यों के नाम पर हो। **(क्रमशः)**

स्वामी ब्रह्मानन्द जयन्ती विशेष

श्रीरामकृष्ण के लीला-साथी मानसपुत्र राखाल

स्वामी ईशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

सनातन धर्म में ब्रह्म को ही सर्वोच्च तत्त्व माना गया है। ब्रह्म शब्द का अर्थ है – बृहद्, बड़ा। महाभारत के शान्ति पर्व में कहा गया है – **बृहद् ब्रह्म महच्चेति शब्दाः पर्यायवाचकः**।[१] दूसरे शब्दों में कहें तो, जो सबके भरण-पोषण का स्रोत और सत्य, ज्ञान और शाश्वत स्वरूप है तथा उससे बढ़कर कुछ भी नहीं है, वही ब्रह्म है। अब प्रश्न उठता है कि इस ब्रह्म को जानने का साधन क्या है? इसका सीधा उत्तर है – उपनिषद। क्योंकि उपनिषद कहते हैं – **तद् ब्रह्म उपनिषद परम**।[२] अर्थात् ऐसे ब्रह्म उपनिषद से ही ज्ञात होते हैं। ब्रह्मसूत्र में भी कहा गया है – 'शास्त्रयोनित्वात्' अर्थात् वेदान्त शास्त्र ही उसे जानने का एकमात्र साधन है। **'शास्त्रादेव प्रमाणं जगतो जन्मादिकारणं ब्रह्मादिगमयत इत्यभिप्रायः।'**

शास्त्रों में मुख्यत: श्रुति में ब्रह्म के दो प्रकार बताए गए हैं – सगुण और निर्गुण। कभी-कभी पृथक् भाव से या कभी मिश्रित भाव से। उदाहरणस्वरूप, कठोपनिषद में ब्रह्म को निर्गुण, अशब्द, अस्पर्श, अव्यय, रसहीन, नित्य आदि कहा गया है। पुन: छान्दोग्योपनिषद में सगुण ब्रह्म के बारे में कहा गया है – **सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरस**।[३] तैत्तिरीय उपनिषद में है – **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते** – इस मन्त्र में ब्रह्म को जगत-कारण के रूप में चिह्नित किया गया है।

अब जो पूर्ण है, आप्तकाम है, आत्माराम है, जिसकी कोई कमी, आवश्यकता और इच्छा नहीं है, वह ब्रह्म के रूप में सृजन में क्यों लगे हुए हैं? इसका उत्तर वेदान्त दर्शन में व्यासदेव जी देते हुये कहते हैं कि यह सृष्टि मात्र ईश्वर की क्रीड़ा है – **'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्'**। और इस लीलारूपी क्रीड़ा को खेलने के लिए उन्हें साथी की आवश्यकता होती है। एक, अद्वितीय होने से क्रीड़ा नहीं होती। इसलिए उपनिषद में कहा गया है – **'तस्मात् एकाकी न रमते'** – अकेलापन अच्छा नहीं लगता। इसलिए **'द्वितीयं ऐच्छत्'**[४] – द्वितीय होने की इच्छा की, बहु होने की इच्छा – **'सोऽकामयत बहु स्याम'**[५]। इस प्रकार **'रसो वै सः'** – रस रूपी भगवान स्वयं को अनेक कर इस अनेकता के द्वारा रसास्वादन करते हैं। यही सृष्टि का कारण है। केवल सृष्टि के द्वारा ही नहीं, अपितु अवतार बनकर आने का एक कारण यह भी है कि भगवान लीला-सहचरों के माध्यम से अपना विस्तार करते हैं और अपने रस स्वरूप का आस्वादन करते हैं। अत: अवतार-लीला उनकी आनन्द-लीला है। श्रीमद्भागवत् में रासलीला के सम्बन्ध में शुकदेवजी कहते हैं –

रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरीभिः यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।[६]

रेमे शब्द का अर्थ आनन्द है। रमेशो यानी लक्ष्मीपति ही कृष्ण हैं। किसके साथ? व्रजसुन्दरी अर्थात् अपने लीला-पार्षद के साथ। अब कृष्ण के साथ व्रजसुन्दरियों का लीला का क्या सम्बन्ध है? ऐसा कहते हुए भागवतकार कहते हैं, जैसे कोई लड़का अपनी परछाई के साथ खेलता है। वस्ततु: किसी भी वस्तु को उसके प्रतिबिम्ब अर्थात् छाया से अलग नहीं किया जा सकता। क्योंकि वस्तु और उसका प्रतिबिम्ब अप्रभेद्य हैं। उसी प्रकार अवतार और उसके पार्षद् का सम्बन्ध अविभाज्य है। पार्षद् अवतार के अंश हैं। लीलास्वादनार्थ भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं, किन्तु सम्बन्ध अंश-अंशी का ही है।

इन्हीं शब्दों की प्रतिध्वनि युगावतार भगवान श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से सुनी जा सकती है। २० मार्च, १८८६ को

श्रीरामकृष्ण ने अपने पार्षदों से कहा, 'तुम सभी इसके अंश हो'। एक बार श्रीमाँ ने स्वामी अरूपानन्द जी से कहा था – ''ठाकुरजी कहते थे कि वे (श्रीरामकृष्ण पार्षदगण) उनके शरीर से, कुछ रोम-कूपों से, कुछ हाथों और कुछ पैरों से प्रकट हुए हैं। वे सभी उनके संगी-साथी हैं।''[७] अत: स्वामी ब्रह्मानन्दादि पार्षदगण श्रीरामकृष्ण के अंश हैं। उनके ही कायव्यूह हैं।

उपरोक्त सभी शास्त्रीय प्रमाणों को श्रीरामकृष्ण और स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज की दिव्य लीला के माध्यम से हम साकार होते देखते हैं। ठाकुरजी ने एक बार जगदम्बा से प्रार्थना की – मेरे जैसा ही एक साथी ला दो।[८] अकेले रहना पसन्द नहीं है, साथी का अन्वेषण है। बृहदारण्यक उपनिषद के शब्दों में कहें, तो 'एकाकी न रमते – अकेले नहीं रमते'। इसलिए साथी चाहिए। कैसा साथी? तो मेरे जैसा। 'श्रीमद्भागवत के शब्दों में 'स्वप्रतिबिम्बविभ्रम:'। ठाकुरजी यह भी कहते थे, 'माँ, मेरे बच्चे तो नहीं होंगे, लेकिन मैं चाहता हूँ कि एक शुद्ध-सात्त्विक पुत्र सदैव मेरे साथ रहे। मुझे वैसा ही स्वभाव वाला पुत्र दो।'[९] अर्थात् दूसरा अवतार बनने की इच्छा, 'द्वितीयं ऐच्छत'। क्योंकि दूसरे अवतार द्वारा लीला का आस्वादन करना है।

उनकी यह इच्छा साकार हुई। एक दिन ठाकुरजी ने अपने भाव नेत्रों से देखा कि माँ एक लड़के को उनकी गोद में लाकर बिठा रही है और कह रही है कि यह तुम्हारा बेटा है। माँ ने यह भी कहा कि वह साधारण सांसारिक पुत्र नहीं है, अपितु त्यागी मानसपुत्र है। एक अन्य दर्शन में ठाकुरजी ने उसी लड़के को भगवान कृष्ण के साथ यमुनाजी पर प्रस्फुटित कमल पर नृत्य करते देखा। राखाल को देखकर ठाकुरजी समझ गये कि यही वह नृत्य करने वाला लड़का है। इन दो दिव्य दर्शनों से हमें पता चलता है कि एक ओर राखाल ठाकुरजी की अद्वितीय लीला के साथी थे, तो दूसरी ओर उनके मानसपुत्र थे। इन दोनों के सम्बन्ध का अद्भुत संयोग उनकी दिव्य लीलाओं में देखने को मिलता है।

पारम्परिक वैदिक परम्परा में हम पिता के द्वारा अपनी प्राण शक्ति, साधना और आध्यात्मिक परम्परा पुत्र को हस्तान्तरित करते हुए पाते हैं। इसलिये पुत्र ही उस परम्परा का धारक एवं वाहक होता है। इस समग्र प्रणाली को सम्प्राप्ति कहा जाता था। बृहदारण्यक उपनिषद के शब्दों में **'स यदैवं विद्ष्माल्लोकाऽप्रेत्यथेभिरेव प्राणै: सह पुत्रमाविशति'**[१०] अर्थात् जब पिता इस लोक से चला जाता है, तो वह अपनी आत्मा के साथ बेटे के शरीर में प्रवेश कर जाता है।

वर्तमान युग में एक आदर्श आध्यात्मिक पिता सदृश श्रीरामकृष्ण ने भी अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा अपने मानस पुत्र राखाल राजा को हस्तान्तरित की। इसके परिणामस्वरूप राखाल श्रीरामकृष्ण के प्रतिबिम्ब बन गये। राखाल के चरित्र के माध्यम से श्रीरामकृष्ण पुन: मूर्त्त हो उठे। इन दोनों पात्रों में एक अद्भुत समानता देखी जा सकती है। ईश्वर-तन्मयता श्रीरामकृष्ण के जीवन का मुख्य लक्ष्य था, जो उनके मानस पुत्र के चरित्र में पूर्णत: साकार हुआ। राजा महाराज का मन भी नाम-रूप की भूमि के इतने ऊपर चला जाता था कि वह कई बार अपने नाम का हस्ताक्षर भी नहीं कर पाते थे। इसलिए स्वामी सारदानन्द जी को उनका हस्ताक्षर करवाने के लिये बार-बार वापस जाना पड़ता था। स्वामी विवेकानन्द राजा महाराज के विषय में कहा करते थे – ''राखाल अपने भीतर समस्त आध्यात्मिकताओं को लेकर बैठा है, उसका मन पूर्णत: उसमें रमा हुआ है।''[११]

राजा महाराज ठाकुरजी के सदृश ही लोगों के मन को उच्च आध्यात्मिक स्थिति में ले जा सकते थे। एक बार जीवन की कठिन परीक्षाओं के समय ठाकुरजी के गृहस्थ-भक्त देवेन बाबू का मन घोर सांसारिक हो गया। इस स्थिति से मुक्त होने के लिए एक दिन वे बड़ी मानसिक अशान्ति के साथ राजा महाराज से मिले। राजा महाराज के पावन स्पर्श से देवेन बाबू को अद्भुत आध्यात्मिक शान्ति मिली। देवेन बाबू की यह घटना कोई अकेली घटना नहीं है, यह अवतार के नित्य पार्षद के जीवन की नित्य घटना है।

जिस प्रकार से श्रीरामकृष्ण के सम्मुख तीर्थ की महिमा प्रकट हो जाती थी, उसी प्रकार उनके मानसपुत्र राखाल के सामने भी तीर्थ की महिमा स्वयं प्रकट हो जाती थी। मदुरै मीनाक्षी, कन्याकुमारी, रामेश्वर आदि स्थानों पर राजा महाराज के दिव्य दर्शन इसके अकाट्य प्रमाण हैं। एक घटना है – राजा महाराज के तिरूपति वेंकटेश्वर बालाजी की यात्रा के समय उन्हें भगवान नारायण के स्थान पर देवी त्रिपुर बाला के दर्शन हुये। तब उन्हें यह नहीं पता था कि किसी समय इसकी पूजा देवी-मूर्ति के रूप में की जाती थी। अत: इस प्रकार तीर्थ का वास्तविक स्वरूप उनके सामने प्रकट हो गया।

दोनों के बीच न केवल भावनात्मक बल्कि व्यावहारिक समानताएँ भी देखी जा सकती हैं। इसलिये स्वामी सारदानन्द जी कहते हैं कि ठाकुरजी की परमहंस-अवस्था की गति को

हममें से केवल महाराज ही देख सकते हैं।[१२] एक बार स्वामी विश्वानन्द को श्रीमाँ ने कहा था, ''ध्यान से राजा महाराज के चाल-चलन को देखो, तभी तुम ठाकुरजी कैसे थे, इसकी धारणा कर सकते हो।''[१३] यह केवल दृष्टिकोण और शिष्टाचार में समानता नहीं है, अपितु कई लोग राजा महाराज में श्रीरामकृष्ण को देखते हैं या उनकी प्रत्यक्ष उपस्थिति का अनुभव करते हैं। एक बार महाराज मठ में पीछे होकर खड़े थे, तब ठाकुर के भक्त और श्रीमाँ की एक अन्तरंग पार्षद योगीन-माँ को महाराज में ठाकुरजी के दर्शन हुए। श्रीशचन्द्र मतिलाल के संस्मरणों के अनुसार मद्रास के कुछ भक्तों ने महाराज में ही ठाकुरजी की उपस्थिति की अनुभव कर उनकी पूजा की। राजा महाराज ने समाधिस्थ हो उनकी पूजा ग्रहण की। स्वामी शिवानन्द जी कहते थे – 'महाराज ठाकुरजी के पुत्र हैं। जब आपको उनका आशीर्वाद मिलेगा, तो आपको लगेगा कि आपको ठाकुरजी का ही आशीर्वाद मिला है। ठाकुरजी की आध्यात्मिक शक्ति अब उनके माध्यम से विश्व में पहुँच रही है।'

इस प्रकार हमने देखा कि श्रीरामकृष्ण की अवतार-लीला में स्वामी ब्रह्मानन्द जी 'राखाल महाराज' श्रीरामकृष्ण के अस्तित्व के पूर्ण प्रतिबिम्ब बन गये हैं। वस्तुत: वे श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र हैं। लेकिन राखालराज केवल मानस पुत्र ही नहीं हैं, अपितु अवतार-लीला में उनके सहयोगी हैं, सहचर भी हैं, क्रीड़ा साथी हैं। इसलिये उनकी स्तुति में कहा जाता है – **'कालिदी फुल्लकमले माधवेन क्रीडारत'**। इसलिये स्वयं अपनी महासमाधि से पहले उन्होंने अपना स्वरूप प्रकट किया। शरीर त्यागने से एक दिन पहले वे व्यग्र हो गये और कहा – ''यही हैं पूर्णचन्द्र – श्रीरामकृष्ण। मुझे उन रामकृष्ण का केवल कृष्ण चाहिए। मैं ब्रज का राखाल हूँ। दो, दो, मुझे घुंघरू पहना दो। मैं कृष्ण का हाथ पकड़कर नाचूँगा। झूम झूम झूम झूम...।'' श्रीमहाराज के मुख से पुन: श्रीरामकृष्ण की उक्ति सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। मानो यह उक्ति श्रीरामकृष्ण के नहीं, अपितु उनके मानस-पुत्र के द्वारा स्वधाम-गमन के पूर्व जगत में अपने स्वरूप को प्रकट कर देना था।

अवतार की नित्य लीला उनके शरीर छोड़ने के बाद भी उनकी भागवती तनु को आश्रय लेकर चलती रहती है। श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद जब महाराज एक दिन भुवनेश्वर मठ में खड़े थे, अचानक ऊपर से उनके शरीर और पैरों पर अबीर गिरा। छत पर कोई नहीं था। बाद में पता चला कि होली का दिन था। इसलिये तो भगवान ने एक अदृश्य पुरुष से अपने नित्य पार्षद के साथ अबीर का खेल खेला।[१४]

एक लड़की अपने पति की मृत्यु के बाद एक वर्ष तक ईश्वर से मार्गदर्शन की याचना करती रही। अन्त में ठाकुरजी ने उसे सोते समय बागबाजार में अपने मानस-पुत्र राखाल के पास जाने का आदेश दिया। उस लड़की को तब श्रीरामकृष्ण देव के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था। बाद में वह अपनी माँ की सहायता से पहले शरत् महाराज के पास और बाद में उनके निर्देश पर राजा महाराज के पास गई और सब कुछ बताया। यह सुनकर महाराज ने तुरन्त उसे दीक्षा दे दी। बाद में वह महिला एक उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त करती है। अन्त में वह श्रीरामकृष्ण और राजा महाराज के चित्रों के सामने उनके नामों का जप करते हुए अमृत लोक की यात्रा करती है।[१५] यह पिता और उनके पुत्र की दिव्य लीला का एक उदाहरण है।

अवतार और उनके पार्षदों की लीलायें सदैव प्रवाहित होती रहती हैं। राजा महाराज की समाधि के बाद सन् १९४२ में ब्राजील के एक शहर में इन्डोर डी सिल्वा नामक एक सज्जन को कई बार राजा महाराज के दिव्य दर्शन हुए। हालाँकि इस दर्शन से पहले उन्हें राजा महाराज और श्रीरामकृष्ण के बारे में कुछ भी नहीं पता था। राजा महाराज के आदेश पर उन्होंने अपनी नौकरी छोड़ दी और बच्चों के लिए एक आश्रम बनाया। जिसके माध्यम से ब्राजील में रामकृष्ण भावान्दोलन का प्रारम्भ हुआ।

अत: नित्य लीला आज भी जारी है। इस लीला का दर्शन शुद्ध-सात्त्विक भक्तों को ही होता है। चाहिये केवल वह दृष्टि और पवित्र श्रवण। तभी तो एक वैष्णव सन्त-कवि कहते हैं –

अभी भी वैसी ही लीला करते हरि गौर सुन्दर।
कोई भाग्यवान ही करते उनके दर्शन मनोहर।।

ooo

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. महाभारत, स्वामी चिद्घनानन्द रचित अद्वैतवाद पृष्ठ ३४ **२.** श्वेताश्वेतर उपनिषद १/१६ **३.** छान्दोग्योपनिषद ३.१४.४ **४.** बृहदारण्यक उपनिषद १/४/३ **५.** तैतरीय उपनिषद २/६ **६.** भागवत् १०/३३/१६ **७.** श्रीश्रीमायेर कथा -२१२ **८.** ब्रह्मानन्द चरित, अध्याय १, पृष्ठ-३ **९.** वही, पृ. ३ **१०.** बृहदारण्यक उपनिषद १/५/१७ **११.** देवलोकेर कथा-९ **१२.** ब्रह्मानन्द चरित, सद्गुरु, पृ. २६७ **१३.** वही, २६७ **१४.** देवलोकेर कथा १००-१०१ १५. वही,पृ. ४१

स्वामी ब्रह्मानन्द जयन्ती विशेष

पाठशाला में मित्रों की पिटाई से दुखी राखालराज

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो! आज हम श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी के जीवन के सम्बन्ध में जानेंगे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी का बचपन का नाम राखाल था। श्रीरामकृष्ण-वचनामृतकार की दैनन्दिनी का अनुसरण करने पर दिखाई पड़ता है कि श्रीरामकृष्ण राखाल के साथ वात्सल्य भाव से व्यवहार करते थे। श्रीरामकृष्ण अपने जीवन के अन्तिम दिनों तक माता के समान राखाल को पुत्रवत् स्नेह करते रहे। जिस राखाल को देखने मात्र से ठाकुर श्रीरामकृष्ण में इस देवदुर्लभ भाव का उदय होता, उनके सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं भक्तों को बलराम भवन में कहा था, ''माँ, तुमसे कहा था, मेरी तरह एक जन को संगी बना दो, इसलिए तुमने राखाल को दिया है न!'' किसी अन्य दिन ठाकुर ने कहा था, ''कीर्तन सुनते-सुनते राखाल को मैंने देखा था – वह ब्रजमंडल के भीतर था।''

श्रीरामकृष्ण एवं उनके मानसपुत्र का सम्बन्ध कवि-कल्पना की वस्तु नहीं है, अध्यात्म जगत की एक वास्तविक घटना है। उनके अलौकिक सम्बन्ध का आभास वचनामृतकार द्वारा उल्लेखित एक घटना में प्रकाशित हुआ है। श्रीयुक्त राखाल को देखकर ठाकुर पुन: भावाविष्ट हो रहे हैं। भाव में राखाल को पुकार रहे हैं, मैं यहाँ बहुत दिन से आया हूँ। तू कब आया? क्या ठाकुर इशारे से कह रहे हैं कि वे ईश्वर के अवतार हैं और राखाल उनके एक अंतरंग पार्षद हैं?

श्रीरामकृष्ण माँ यशोदा की तरह राखाल के मस्तक, चिबुक और पीठ पर स्नेह से हाथ फेरते, दुलार करते फिर कभी बालक के साथ खेल में डूब जाते या कुश्ती का अभ्यास करते। वे उन्हें प्रेम से मक्खन खिलाते, सभी प्रकार के संकटों से उन्हें बचाकर रखते। श्रीरामकृष्ण की आयु उस समय प्राय: ४७ वर्ष और राखालचन्द्र की आयु २० वर्ष थी। अद्‌भुत मनोहर है उनका अलौकिक लीला-विलास। दोनों के नित्य सम्बन्ध के वैशिष्ट्य का स्मरण कर श्रीरामकृष्ण-पूँथीकार ने गाया है – **'सम्पर्क समान भावे बांधा चिरकाल।'**

एक शुभ दिन हाथ में खड़िया पकड़ा कर बालक राखाल का लिखना-पढ़ना आरम्भ हुआ। जमींदार आनन्द मोहन की इच्छा के अनुसार घर के निकट ही एक अवैतनिक पाठशाला स्थापित हुई। प्रसन्न सरकार शिक्षक नियुक्त हुए, वहीं बालक की नियमित रूप में प्राथमिक शिक्षा का आरम्भ हुआ। श्रुतिधर बालक पाठशाला की परीक्षाओं में प्रथम स्थान पाता रहा। हर्षित आनन्द मोहन पुत्र के उज्ज्वल भविष्य का स्वप्न देखने लगे। इसकी एक घटना उल्लेखनीय है। पाठशाला में सहपाठियों के अंग पर बेंत का आघात पड़ने पर बालक का प्रेमपूर्ण हृदय रो उठता, आँखों से आँसू झरने लगते। स्नेहपरायण शिक्षक महोदय ने बालक के अश्रुजल से व्यथित होकर पाठशाला में बेंत से दण्ड देना वर्जित कर दिया। खाली समय में किशोर राखाल में फूल-फल के बगीचे बनाने की रुचि दिखायी पड़ती। परवर्तीकाल में आचार्य रूप में जब उन्हें संसार-मरुद्यान में जगह-जगह शान्ति नीड़ रामकृष्ण लीला-उद्यान की रचना करते हुए तथा संसार-सरोवर से शुद्ध पवित्र मुमुक्षु संन्यासियों को गुरुशक्ति के आकर्षण द्वारा खींचते हुए देखते हैं, तब स्वाभाविक रूप से बचपन की उनकी रुचियों का स्मरण हो आता है। इस तरह शिकराग्राम के स्नेहांचल में किशोर के आरम्भिक १२ वर्ष व्यतीत हुए। ○○○

शिवरात्रि विशेष

शिवसूक्तम्

(छन्दः – पंक्ति)

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

कस्मात् प्रसूतः किं च कुलं ते, जानन्ति नैव सुरादयोऽपि।
त्वया प्रसूतो ब्रह्माण्ड एष कुल प्रसविता त्वं स्वयम्भूः।।१।।

– हे स्वयम्भू, आप किससे उत्पन्न हुए और आपका वंश क्या है, यह तो देवता भी नहीं जानते। परन्तु इस ब्रह्माण्ड को आपने ही उत्पन्न किया है और सबके कुलजनक आप ही हो।

निराश्रयोऽपि सर्वशरण्यं, दिगम्बरोऽपि कुबेरस्वामी।
विदग्धकामो मनोरथानां गतिस्त्वमेव देवाधिदेव।।२।।

– हे देवाधिदेव, आप स्वयं आश्रयस्वरूप भवन से रहित होकर भी सबके शरणदाता हैं, स्वयं वस्त्रविहीन रहते हुए भी धनपति कुबेर के स्वामी हैं। आपने काम को जला दिया है, पर सबकी मनोकामनाओं की पूर्ति आप ही करते हैं।

सत्त्वप्रधानं विष्णुं चकर्थ, विरञ्चिनञ्च रजः प्रधानम्।
तस्माद् विमूढास्तमःप्रधानं, वदन्ति लोकास्ते निर्गुणाय।।३।।

– हे भगवान शिव ! आपने विष्णु को सत्त्वप्रधान और ब्रह्माजी को रजःप्रधान बनाया, इसलिए मूढ़ लोग आपको तमःप्रधान कहते हैं।

तव महिम्नो ये गातुकामाः, तेषां प्रयत्नः वक्त्रस्थितेन।
दण्डेन मातुमिव प्रयातः, कश्चिद् विहंगो व्योम विशालम्।।४।।

– जो कोई भी तुम्हारी महिमाओं को गाना चाहता है, उसका प्रयास तो वैसा ही है, जैसे कोई पक्षी अपनी चोंच में दबी लकड़ी लेकर आकाश को मापने चल पड़े।

रत्नानि रत्नाकरोद्गतानि गृहीतवन्तः तान्यन्यदेवाः।
परञ्च हालाहलं निपीय ररक्षिथेमां धरां त्वमेव।।५।।

– समुद्र-मंथन से जो रत्नादि निकले, उन्हें तो अन्य देवताओं ने ग्रहण किया, परन्तु हालाहल विष को पीकर इस धरती को आपने ही बचाया।

प्रिया यथार्याः त्रिशूलिनस्ते, अनार्यबन्धुस्त्वमेव देव।
जुगुप्ससे न सर्वसमत्वात्, तस्मात् प्रसिद्धस्त्वं भूतनाथः।।६।।

– हे त्रिशूलधारी ! जिस तरह तुम्हें आर्यजन प्रिय हैं, उसी तरह अनार्यों के भी तुम्हीं एकमात्र बन्धु हो। सबके प्रति समभाव के कारण किसी से घृणा नहीं रखते। इसीलिए तुम्हारा भूतनाथ नाम लोक प्रसिद्ध है।

अस्पृश्यवस्तु मतं यदत्र, अङ्गीकृतं तत् सर्वं त्वयैव।
उक्ता विभूतिर्चिताग्निभस्म, विजयासंज्ञासत्कृतभङ्गा।।७।।

– हे महादेव ! जो इस संसार में अछूत वस्तुएँ मानी जाती हैं, उन सबको आपने अपना लिया और आपके अपनाने से चिता की राख को विभूति नाम मिल गया तथा भांग का नाम विजया हो गया।

समुल्लसन्ति मुनयः सिद्धाः समर्चनचित्रमहोत्सवे।
तत्र प्रवेष्टुं समुत्सुकोऽहं वरं देहि जगदीश्वर मे।।८।।

– हे जगदीश्वर ! जहाँ सिद्ध मुनिजन आपके अद्भुत अर्चन-उत्सव में आनन्दित होते रहते हैं, मैं भी वहीं प्रवेश पाने की इच्छा रखता हूँ। इस हेतु आप मुझे वर प्रदान करें। ○○○

कविता

देवि सरस्वति तुम्हें प्रणाम

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

सुन्दर शुभ्र वस्त्र से शोभित, देवि सरस्वति तुम्हें प्रणाम ।
वीणा-पुस्तकधारिणि देवी, भजूँ तुम्हें मैं आठों याम ।।
तुम ही हो माँ मोक्षदायिनी, सुर-मुनिगणसेवित अविराम ।
शोक-क्रोध-मद-मोहनाशिनी, ब्रह्मशक्ति तुम अति अभिराम।।
सिद्धिदायिनी हंसवाहिनी, तुम ही सकल ज्ञान की धाम ।
विद्या-बुद्धि प्रदायिनी देवी, परम सत्त्वमयी तुम निष्काम ।।
ब्रह्मविचारसार तुम माता, धारित करती बहुविध नाम ।
सर्वचराचर व्यापक तुम हो, नित्य गुणमयी तुम्हें प्रणाम ।।

स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

(ब्रह्मलीन स्वामी सत्यरूपानन्द जी रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रस्तुत है, उनके द्वारा विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में 'विवेकानन्द और गाँधी' पर आयोजित द्विदिवसीय गोष्ठी में प्रदत्त व्याख्यान का सारांश)

(गतांक से आगे)

तीसरी बात थी एकाग्रता। इन दोनों महापुरुषों में एकाग्रता थी। विवेकानन्दजी संन्यासी थे, जिसमें डूब गए, तो डूब गए। एक बार जो पुस्तक उन्होंने पढ़ना शुरु किया, तो आसपास क्या हो रहा है, उस ओर उनका ध्यान नहीं जाता था। वे उसमें डूब जाते थे। ऐसी अखण्ड एकाग्रता उनको बचपन से प्राप्त थी।

गाँधीजी स्वतन्त्रता-संग्राम सेवक थे। जब वे जेल में थे, तो उनके अन्य कई साथी भी थे। गाँधीजी ने उन लोगों से कहा कि अपना समय गीता पढ़ने के सत्कर्म में लगाओ। वे लोग इतने समर्थ नहीं थे। पढ़ने की कोशिश करें, पर उनका मन न लगे। गाँधीजी बड़ी एकाग्रता से गीता पढ़ते थे। दूसरी पुस्तकें जिसमें उनकी रुचि थी, उसे पूर्ण एकाग्रता से पढ़ते थे। उनको तब यह ध्यान नहीं रहता था कि वे जेल में हैं। भोजन और अन्य सुविधाओं पर उनका ध्यान नहीं जाता था। इस प्रकार वे संसार को भूल कर स्वतन्त्रता संग्राम सेवक का काम करते थे। इन महापुरुषों के जीवन में शक्ति उनकी इस तपस्या से आई थी। उस तपस्या का सरल नाम आत्मसंयम और इन्द्रिय-निग्रह है।

हम भले ही उनलोगों की नकल न करें। न गाँधी और विवेकानन्द बनने का प्रयास करें। किन्तु उनके जीवन से जो शिक्षा मिली, जिससे उनलोगों ने महान शक्ति प्राप्त की, वह शक्ति हम सबमें है। उसको जाग्रत करने के लिए हममें से प्रत्येक के पास अलग-अलग उपाय हैं, पर एक चीज सामान्य है और वह है इन्द्रिय-निग्रह का अभ्यास, आत्मसंयम का अभ्यास। इसमें हमारे सारे अंग आते हैं।

इन्द्रिय-निग्रह एक दिन में नहीं होता। हम जब तक जीवित रहेंगे, तब तक हमारी इन्द्रियाँ हमें विवश करने का प्रयास करेंगी। हमें सावधान रहना होगा। जैसे एक बहुत अच्छा तांगा चलानेवाला घोड़े को लगाम लगाकर रखता है और उसे जहाँ जाना होता है, सही रास्ते पर ले जाता है। घुड़सवार लगाम से बड़े से बड़े घोड़े को वश में कर लेते हैं। उसी प्रकार अपनी इन्द्रियों को वश में रखने का प्रयास करना होगा। सामने आनेवाले आकर्षणों से नहीं बच सकते। जिह्वा से या मुँह से जो खाते हैं, स्पर्श आदि सबका प्रभाव होता है। इसकी स्मृति रह जाती है। इससे प्रत्येक दिन, प्रत्येक क्षण सावधान रहना होगा। अपनी चेष्टा की ओर ध्यान देना होगा। हम इन्द्रिय-निग्रह में कई बार असफल होंगे, किन्तु प्रत्येक असफलता हमको और दृढ़ता देती है और एक न एक दिन हम सफल हो जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द और गाँधीजी ने इन्द्रिय-संयम की जो बात कही थी, वही उनकी सारी शक्तियों का रहस्य था। स्वामीजी पूर्ण एकाग्रता से अपना इन्द्रिय-संयम कर सकें। और उससे उन्होंने ईश्वर का साक्षात्कार किया। गाँधीजी ने पूर्ण एकाग्रता से सेवा भाव का व्रत लिया और देश की सेवा की। उन्होंने देश की आजादी के लिए अपना सब कुछ समर्पित कर दिया।

अन्तिम बात यह है कि इन दोनों महापुरुषों के जीवन में परम त्याग था। त्याग के बिना इन्द्रिय-निग्रह सहायक नहीं हो सकता। गाँधीजी ने यह अनुभव किया।

संगठन शक्ति – स्वामीजी ने अमेरिका जाकर देखा और सीखा कि कोई भी काम करना है, तो संगठन चाहिये। अमेरिका के लोग एक सोसायटी बनाते थे और उस सोसायटी से काम होता था। स्वामीजी बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि गुरु के आदेशानुसार यदि भारत देश का विकास करना है, इस देश को आध्यात्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाना है, तो मुझे लोगों को मिलाकर एक संगठन बनाना पड़ेगा। संगठन के दोषों को भी उन्होंने देखा। उस पर भी उन्होंने ध्यान दिया। उन्होंने एक नियमावली अपने शिष्य और गुरुभाइयों के कहने से बनाई। जिसमें इन सब

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

श्रीरामकृष्ण-गीता (४३)

(आठवाँ अध्याय ८/६)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

कुरुते सर्वकर्माणि परव्यसनिनी यथा।
उषित्वापि च संसारे आत्मीयैः स्वजनैः सह।।२९।।
सर्वदाकृष्टचित्ता सा तथाप्युपपतिं प्रति।
चिन्तयति कदा प्रेप्से रता गृह्यकृते सदा।।३०।

– जैसे कुलटा महिला स्वजनों के बीच रहकर घर-गृहस्थी का सारा कार्य करती है, किन्तु उसका मन सदा उपपति, प्रेमी पर रहता है। वह कार्य करते-करते सदा सोचती है कि कब उससे मिलूँगी।

तद्वन्मन्स्तु युष्माकं गृहकर्माणि कुर्वताम्।
भगवन्तं प्रति स्थेयात् संसारेऽस्मिन् सदैव हि।।३१।।

– वैसे ही तुमलोगों का मन भी घर-गृहस्थी का कार्य करते हुए सर्वदा ही भगवान की ओर लगा रहे।

निर्लिप्तः सन् नु किं वेत्सि संसारे कीदृशं वसेत्।
तद्यथा पंकमत्सास्ते पंकमध्ये सदास्सते।।३२।।

– निर्लिप्त भाव से संसार-गृहस्थी करना जानते हो, कैसा है? जैसे पाँकाल मछली पंक में रहती है।

पंकस्थाः पंकमत्सास्ते न लिप्ताः कर्दमेन ते।
निर्लिप्तो वस संसारे मीन इव निषद्वरे।।३३।।

– जैसे पाँकाल मछली पंक में रहती है, किन्तु उसके शरीर में पंक नहीं लगता है। वैसे ही पाँकाल मछली जैसे निर्लिप्त होकर संसार में निवास करो।

निमग्नः स्याद् गरीयान् यो द्वयोरेकस्तुलाघटः।
लघीयान् यः स यात्युर्ध्वं तयोरन्यस्तथैव च।।३४।।

– दण्ड-पल्ला का जिस ओर पल्ला भारी होता है, उसी ओर झुक जाता है और जिस ओर हलका होता है, उस ओर ऊपर उठ जाता है।

तत्तुलादण्डवद्विद्धि मनुष्याणां मनस्तथा।
प्रान्तैक स्मिंस्तु संसारोऽस्याऽन्यस्मिन् भगवान स्वयं।।३५।।

– वैसे ही मनुष्य का मन भी उसी दण्ड-पल्ला न्याय जैसा है। एक ओर संसार है और दूसरी ओर स्वयं भगवान हैं। **(क्रमशः)**

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

बातों का संकेत और उदाहरण है। स्वामी विवेकानन्द जी ने एक संगठन बनाया 'रामकृष्ण मिशन'। रामकृष्ण मठ का प्रारम्भ तो उनके गुरु ने इन लोगों को लेकर किया था। विवेकानन्द से कहा था, इन लोगों को घर मत जाने देना। इनको यहीं रहने देना।

स्वामीजी जब अमेरिका से लौटकर आए। अपने गुरु भाइयों को बुलाकर कहा कि गुरुदेव के विचारों को संचालित करने के लिये एक संगठन की आवश्यकता है। उन्होंने संस्था बनाई, जिसका नाम 'रामकृष्ण मिशन' है। विवेकानन्द ने उसका नाम विवेकानन्द मिशन नहीं रखा। वेदान्त मिशन नहीं रखा। अपने गुरु के नाम से रखा। स्वामी विवेकानन्द संगठन बनाने के बाद उससे एकदम अलग हो गए। स्वामी ब्रह्मानन्द को अध्यक्ष बना दिया। दूसरे गुरुभाइयों को उसका सदस्य बनाया। स्वयं उसमें कुछ नहीं थे, न तो सदस्य थे और न अध्यक्ष। मेरा काम अब पूर्ण हो गया। इसे अब तुम लोग आगे बढ़ाओ। मेरे गुरुभाई अब तुम इस मठ के संचालक हो। यदि तुम मुझे जीवन भर कहो कि तुम मठ की नालियाँ साफ करो, तो वह भी मैं कर सकता हूँ। ऐसा त्याग विश्वप्रसिद्ध विवेकानन्द का था। सारा संसार उनके चरणों में झुकता था।

स्वामीजी इतने निरंहकारी थे कि विदेश से आने के बाद एक धोती और टोपी पहने बेलूड़ बाजार से दो पैसे का चना हाथ में लेकर खाते हुये आ रहे थे। इतना सादा जीवन था उनका।

गाँधीजी और विवेकानन्दजी के शक्ति का स्रोत था – ईश्वर पर विश्वास, इन्द्रिय संयम, त्याग-तपस्या और संगठन-शक्ति। जिसके जीवन में ये तत्त्व होंगे, उसमें सेवा-भावना अपनेआप आ जाएगी। इन दोनों महापुरुषों के जीवन से यही हमको सीखना है और अपनी शक्ति के अनुसार प्रयास करना है। ○○○ **(समाप्त)**

स्वामी ब्रह्मानन्द जयन्ती विशेष

युवा-शक्ति के प्रेरक स्वामी ब्रह्मानन्द

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

प्रिय युवको, हम जानते हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने १ मई, १८९७ को रामकृष्ण मिशन की स्थापना की थी। स्वामी ब्रह्मानन्द, रामकृष्ण मठ एवं मिशन के प्रथम महाध्यक्ष बने। एक ओर स्वामी विवेकानन्द ने पूरे विश्व को भारत की सनातन संस्कृति से परिचित कराया और वेदान्त के प्रचार-प्रसार से, अपने व्याख्यानों के माध्यम से, भारत की खोई हुई अस्मिता और गरिमा की रक्षा की। दूसरी ओर भारत में उनके एक और गुरुभ्राता स्वामी ब्रह्मानन्द ने भारतीय जनमानस को अपने उपदेशों के माध्यम से मार्गदर्शन प्रदान करते हुए प्रेरित किया। स्वामी ब्रह्मानन्द ने अपने वार्तालापों द्वारा केवल धार्मिक, प्रौढ़ या प्रबुद्ध लोगों का ही मार्गदर्शन नहीं किया, बल्कि युवा छात्रों को भी उन्होंने अपने उपदेशों से प्रेरित किया।

युवाओ, यदि हम स्वामी ब्रह्मानन्द जी के उपदेशों और वार्तालापों का अध्ययन करें, तो हमें उनके उपदेशों में आधुनिक युवाओं की मूलभूत समस्याओं का समाधान मिलता है। आइये, एक ऐसे प्रंसग के बारे में जानते हैं, जिसमें स्वामी ब्रह्मानन्द एक युवा छात्र की समस्या का समाधान करते हैं और उसे सत्स्वभाव तथा अनिष्टकारी स्वभाव के बारे में समझाते हैं।

१. सत्स्वभाव – यह घटना अगस्त, १९१८, रामकृष्णपुर, हावड़ा (पं. बंगाल) की है। स्वामी ब्रह्मानन्द बैठकखाने में बैठे हुए थे। कलकत्ते के एक नवयुवक छात्र ने आकर उन्हें प्रणाम किया। महाराज ने छात्र से पूछा, तुम लोगों के Student's Home (विद्यार्थी-भवन) का काम कैसा चल रहा है?

छात्र – अच्छा नहीं चल रहा है। विभिन्न प्रकार की गड़बड़ियाँ हैं। युवक की बात सुनकर महाराज ने कहा – मुझसे पहले उन सब विषयों के बारे में क्यों नहीं पूछा?

महाराज की बात सुनकर युवक बिना उत्तर दिये, दुखित और अनुतप्त हो विषण्ण चित्त से बैठा रहा। तब महाराज उसे स्नेह से पुकारकर समझाने लगे – देखो, जिन लोगों का तुम भला करोगे, वे ही तुम्हारा अनिष्ट करेंगे। विद्यासागर महाशय ने लोगों का कितना भला किया, किन्तु जिन लोगों ने उनसे सहायता पायी, उन्हीं ने उनकी निन्दा की, अनिष्ट किया। अन्त में वे लोगों से निराश, खिन्न हो गये थे। यह सुनकर कि किसी ने उनकी निन्दा की है, उन्होंने ऐसा भी कहा, 'कहाँ, मैंने तो कभी उसका भला नहीं किया।' यहीं संसार का धर्म है। पर देखो सद्-धर्म अन्य प्रकार का है। सज्जन व्यक्ति उपकार करते ही जायेंगे, वही उनका स्वभाव है और दुष्ट लोग अनिष्ट करेंगे, क्योंकि यह उनका स्वभाव है।

एक साधु नदी किनारे बैठकर जप-ध्यान करता था। एक दिन उसने देखा, एक बिच्छू पानी में बहता चला जा रहा है। उसके मन में दया आयी और वह बिच्छू को हाथ से उठाने लगा। ज्योंही वह बिच्छू को पकड़ने गया, त्योंही उसने डंक मार दिया। साधु दर्द के मारे छटपटाने लगा। कुछ समय बाद फिर से बिच्छू पानी में गिरकर डूबने लगा। यह देख साधु ने फिर से उसे उठा दिया। बिच्छू ने पुन: उसे डंक मारा। कुछ समय बाद फिर से बिच्छू को पानी में गिरा देख साधु जब उसे पुन: उठाने जा रहा था, तो एक व्यक्ति ने कहा, 'देखिए, बिच्छू तो आपको बार-बार डंक मार रहा है और आप हैं कि फिर से उसे उठाने जा रहे हैं।' उसकी बात सुनकर साधु ने उत्तर दिया, 'बिच्छू का स्वभाव है डंक मारना, अत: यह डंक मार रहा है, साधु का स्वभाव है परोपकार करना, अत: मैं वही करूँगा। वह मुझे डंक मार रहा है, इसलिए मैं निर्दय क्यों होऊँ?' यह कहकर उसने फिर से बिच्छू को जल से उठाकर बहुत दूर फेंक दिया, जिससे वह पुन: जल में न गिर सके। जो सज्जन हैं, वे ऐसा ही करते जायेंगे, वे कभी भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ते। (ध्यान, धर्म तथा साधना पृ. (१९-२०)

इस कहानी से युवाओं को यह सन्देश मिलता है कि चाहे जितनी भी बाधाएँ आयें, सज्जन सदैव दूसरों की सहायता और भलाई करने में तत्पर रहते हैं। उन्होंने जिनका भला किया हो, भले ही वे अनिष्ट कार्य करते रहते हों, परन्तु सत्स्वभाव वाले व्यक्ति अपनी अच्छी आदत (सत्स्वभाव) को कभी नहीं छोड़ते हैं। युवाओ, आप बुरी संगति के प्रभाव से बचने के लिए अपने अच्छे स्वभाव का इस प्रकार उपयोग करें, जिससे आपके कार्यकौशल, क्रियाकलाप और व्यवहार से दूसरों का कल्याण हो। मान लीजिए आप किसी उच्च पद पर कार्यरत हैं और आपके द्वारा किसी की सहायता करने पर, वह व्यक्ति आपकी सहायता का लाभ लेकर उसका दुरुपयोग करे, यह भी हो सकता है कि वह व्यक्ति आपका और स्वयं का अनिष्ट भी करे। ऐसा होने पर भी हताश या निराश न होना और दूसरों की सहायता करने का अपना दायित्व या स्वभाव नहीं छोड़ना।

दुष्ट लोगों का स्वभाव है, अपना और दूसरों का अनिष्ट करना, लेकिन यदि आप अपने सत्स्वभाव को नहीं छोड़ते, तो आप वास्तव में, 'नेकी कर, दरिया में डाल' इस प्रसिद्ध लोकोक्ति को अपने जीवन में चरितार्थ कर पायेंगे।

यदि हम अपने अच्छे, नेक कार्यों की बार-बार बड़ाई करते हैं, तो उससे नेकी नहीं होती। नेक कार्य का आत्म विज्ञापन करने से वह अभिमान का रूप ले लेता है। अभिमान मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। इसलिए कहा जाता है, 'नेकी कर, दरिया में डाल', जिसका अर्थ है, यथासम्भव हर किसी की नि:स्वार्थ भाव से सहायता करनी चाहिए और प्रत्युपकार की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। अच्छा काम करना, हमारा स्वभाव हो, हमारी आदत बने। ऐसा किसी उपकार-भाव से नहीं करना चाहिए और नेकी करके भूल जाना चाहिए। यदि हर कोई इसे अपनी आदत बना डाले, तो समाज का कितना भला हो!

वर्तमान काल के अधिकांश युवा भौतिक सुखों की प्राप्ति में ही रत हैं। बहुत कम लोग आत्म-विकास का विचार करते हैं। यदि हजारों में से एक भी आत्म-विकास का विचार करता है, तो यह पर्याप्त है। वास्तव में कोई विरला ही जीवन के सर्वांगीण विकास का विचार करता है। जो अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की आन्तरिक इच्छा रखते हैं और ज्ञान की प्राप्ति के लिये लालायित हैं, वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपने कदम बढ़ाते हैं। अन्य केवल व्यर्थ की बातें करते हैं। क्योंकि उनके अन्त:करण में सार्थक जीवन की वास्तविक इच्छा जाग्रत नहीं हुई है। जो आत्म-विकास के लिए प्रयास नहीं करते हैं, जो बिना प्रयास के क्षणभर में अपने उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते हैं, तो उनका जीवन केवल एक बाहरी आडम्बर है।

आत्म-विकास का पहला चरण है, अपनी सम्भाव्यता को अभिव्यक्त करने की व्याकुलता। किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति का पहला कदम है, हृदय की आन्तरिकता से जीवन के आधारभूत सिद्धान्त को जानने के लिये स्वयं को उत्सर्ग या समर्पित करना।

स्वामी ब्रह्मानन्द कहते हैं – परिश्रम करो, परिश्रम करो, जो पाया है, उसे जीवन में उतारने के लिये सन्देह छोड़कर जी-जान से लग जाओ, ढोल पीटकर नहीं, बल्कि बहुत ही गुप्त रीति से, जिससे लोगों को पता तक न हो। नाना प्रकार के लोग रहते हैं, कोई हँसी-ठिठोली कर भाव नष्ट कर देते हैं, तो कोई प्रशंसा कर अहंकार बढ़ा देते हैं।...

ये उपदेश युवाओं को सन्देश देता है कि जहाँ तक हो सके, आप अपने परिश्रम अथवा अभ्यास को गोपनीय रखने का प्रयत्न करें। कुछ दिन मन लगाकर परिश्रम करने पर, आप देखेंगे कि आपको कितना लाभ हुआ है। आप स्वयं को एक नये व्यक्तित्व के रूप में देखेंगे।

यदि आप परिश्रम और अपने कार्य की गोपनीयता नहीं रखते और दूसरों को अपने कार्य से अवगत कराकर उन्हें आत्मश्लाघा का परिचय देते हैं, इससे या तो आप में अहंकार का भाव जाग्रत होगा या लोग आपसे ईर्ष्या करने लगेंगे। इससे आपका मन अपने लक्ष्य से विचलित

हो जायेगा और मन में व्यर्थ, नकारात्मक, बुरे तथा अशुभ विचारों का प्राबल्य होगा। आप पाखण्ड के द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकते हैं। तो फिर आपका मन स्थिर कैसे हो सकता है?

२. मन को स्थिर करने के उपाय – मन की एकाग्रता से ही स्वयं पर विश्वास प्राप्त किया जा सकता है। जब तक किसी का मस्तिष्क, मन और हृदय संयमित न हो, कोई भी उसमें विश्वास को अनुप्राणित नहीं कर सकता। जो अच्छी आदतों के साथ जीवन का निर्वाह नहीं करता, उसे अपने ऊपर विश्वास और दृढ़ता प्राप्त नहीं हो सकती है।

स्वामी ब्रह्मानन्द के अनुसार मन को दो उपायों से स्थिर करना पड़ता है। प्रथम किसी निर्जन स्थान में जाकर मन को संकल्प-विकल्परहित करके ध्यान-धारणा करना। द्वितीय – अच्छे-अच्छे विचार लेकर चिन्तन करते-करते मन को उन्नत करना। जिस तरह गाय को खिलाने से वह दूध देती है, मन को भी उसी तरह खाद्य चाहिए और वह है ध्यान, जप, सच्चिन्तन इत्यादि। मन का सदा-सर्वदा निरीक्षण करना पड़ता है। जिसमें संघर्ष करने की इच्छा नहीं आई, वह तो मृत है। इसलिए संघर्ष, संघर्ष। यदि जी-जान से यह संघर्ष रहे, तो उसके बाद की अवस्था है शान्ति।

अस्थिर और चंचल मन को नियमित अभ्यास से एकाग्र किया जा सकता है। मन के बेचैन होने पर घबराना क्यों? अपने आप में विश्वास रखें। मन की सभी शक्तियों को एकत्रित करते हुए और उत्तम प्रयास करें। यदि लक्ष्य को प्राप्त करने की दृढ़ इच्छा है, तो किसी भी बाधा का सामना करने में आप विचलित नहीं हो सकते हैं। सभी बाधाओं का सामना करने की चेष्टा करते हुए सम्पूर्ण मन को अपने लक्ष्य पर स्थिर रखने के लिये आप यथाशक्ति प्रयास करें।

युवाओ, एक बात ध्यान में रखें, जहाँ आप अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अभ्यास करते हैं, उस स्थान पर कोई व्यर्थ बातें न हों। जहाँ पर व्यर्थ की बातें, आलोचना और दूसरों की निन्दा होती है, उस स्थान का वातावरण नकारात्मक हो जाता है, उस परिवेश में अनेक प्रकार के बुरे विचार आते हैं। एकान्त में अभ्यास करना (अध्ययन करना) सबसे अच्छा है। अभ्यास के लिए एक अलग एकान्त कमरा होना चाहिए। उस कमरे में केवल अभ्यास से सम्बन्धित, प्रेरणादायी पुस्तकें इत्यादि रखें।

आप जब भी कमरे में प्रवेश करें, तो मन को लक्ष्य की ओर ले जानेवाले तथा उच्च अवस्था में रखनेवाले विचारों का चिन्तन-मनन करें। किसी अन्य विचार को मन में न आने दें। यदि आप एक वर्ष तक भी ऐसी आदत डाल लें, तो उस स्थान का वातावरण पूर्ण रूप से परिवर्तित हो जाएगा। आपके मन में लक्ष्य-प्राप्ति के विचारों का उदय होगा और कमरे में प्रवेश करने पर मन स्वाभाविक ही एकाग्र होने लगेगा। यदि निरन्तर कई वर्षों तक इस प्रकार का अभ्यास करते हैं, तो आपके मन में लक्ष्य को भेदनेवाले विचारों का प्राबल्य होगा।

३. निराश मत होना – कई बार कार्य करते-करते यदि मन भ्रमित या चंचल हो जाये... तब क्या करना चाहिए?

इस प्रश्न के उत्तर में महाराज कहते हैं – हताश मत होओ। निराशा को मन में स्थान कभी मत दो। मन कभी-कभी चंचल हो सकता है, तो चंचल हो जाये। फिर से बलपूर्वक लग जाना होगा। प्राणपण से चेष्टा करनी होगी, जिससे फिर न बहक जाये। जितनी बार भी गड़बड़ क्यों न हो, कभी निराश मत होओ। सर्वदा मन में उत्साह रखो। उद्यमपूर्वक लग जाओ, किसी भी स्थिति में मत छोड़ो। करो या मरो, यही तुम्हारा आदर्श वाक्य है।

अपने उद्देश्य को प्राप्त करना ही होगा। मुझे लक्ष्य को प्राप्त करना ही होगा, इस प्रयत्न में फिर चाहे, जो भी हो जाये।

मान लीजिए आप किसी प्रतियोगिता में भाग लेना चाहते हैं, अध्ययन करना चाहते हैं, इसके लिए आपके आसपास का वातावरण अध्ययन के अनुकूल होना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार का परिवेश आपके उत्थान के लिए अधिक जीवन्त तथा स्थायी होगा। ऐसा क्यों है? क्योंकि हम स्वाभाविक रूप से इन स्थलों में मन में लक्ष्य-प्राप्ति के लिए उत्साह अनुभव करते है? क्योंकि कई सफल व्यक्तियों ने इन स्थानों में अध्ययन तथा परिश्रम किया है और वे सफल हुये हैं। उनकी सफलता उस स्थान के वातावरण में सकारात्मक, उत्साहवर्धक और कुछ अच्छा करने की भावना के रूप में व्याप्त होती है और युवाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बनती है।

क्या एक दिन में ही सब कुछ हो सकता है? आप केवल कुछ महीने ही अभ्यास करते हैं और उसके बाद सोचते हैं

कि हमारी उन्नति क्यों नहीं हुई। मन में बहुत से अच्छे-बुरे विचार या संस्कार सुप्त अवस्था में हैं। यदि अच्छे विचार प्रबल होते हैं, तो बुरे संस्कार की प्रबलता धीरे-धीरे कम हो जाती है। आप निराश कब होते हैं, जब आपका मन बहुत अस्थिर होता है। लेकिन कुछ समय बाद आपके मन में इतने अच्छे विचारों का उत्थान हो जाता है कि मन परिश्रम करने के सिवाय अन्य विषयों में नहीं लगता। आवश्यकता है, अभ्यास में लग जाने की। उचित समय पर आप अपने परिश्रम का परिणाम स्पष्ट देख पायेंगे। यदि कुछ समय तक उचित परिश्रम या अभ्यास करते हैं, तो आपको लक्ष्य की प्राप्त होगी। आपके प्रयासों और लक्ष्य-प्राप्ति की भावना में रुचि और निष्ठा पर बहुत कुछ निर्भर करता है। सक्षम और योग्य आकांक्षी को लक्ष्य प्राप्त होता है। यह कोई काल्पनिक बात नहीं है। जिसने वास्तव में परिश्रम करने का आस्वादन लिया है, वह नाम और प्रसिद्धि के लिए लालायित नहीं होता। कई लोग पैसे, नाम और प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए इतने निम्न कार्य करते हैं कि वे अपने चरित्र तक की तिलांजलि दे देते हैं। ऐसा इसलिये होता है, क्योंकि उन्होंने आन्तरिक आनन्द प्राप्त नहीं किया है। जिसने परिश्रम करके सफलता का आस्वादन लिया है, वह निरर्थक चीजों का लालच नहीं करेगा।

जो परिश्रम करके, चेष्टा करके सफलता के शिखर पर पहुँचता है, जिसने उस सफलता के आनन्द का अनुभव किया है, उसके सामने सब महत्त्वाकांक्षाएँ व्यर्थ हैं, वह निरर्थक विषयों में कभी आनन्द नहीं ढूँढ़ता। क्या कभी समुद्री मछली खरपतवार से युक्त छोटे पंकिल तालाब पर ध्यान देगी!

यदि लक्ष्य-प्राप्ति के विचार को छोड़कर अन्य सभी विचार मन से हटा दिये जाएँ, तो मन में निरन्तर चिन्तन अथवा अपने वास्तविक उद्देश्य का चिन्तन होता है।

ठीक-ठीक अभ्यास और एकाग्रता होने पर बाह्य वस्तुओं की ओर ध्यान नहीं जाता है। आप स्वयं को इतना व्यस्त रखें कि मन में केवल लक्ष्य-प्राप्ति के चिन्तन का प्राबल्य हो। इससे लक्ष्य की प्राप्ति में मग्न रहने की आदत-सी हो जाती है। हर क्षण आप उसी भाव में रहना पसन्द करने लगेंगे। इससे आपको अति प्रसन्नता की प्राप्ति होगी। वह प्रसन्नता शब्दों में व्यक्त नहीं की जा सकती है। अन्य लोग इस स्थिति को नहीं समझ सकते। अपने लक्ष्य पर केन्द्रित रहने से मन की एकाग्रता की प्रगाढ़ता बढ़ जाती है। फिर मन पहले जैसा अस्थिर नहीं रहता। वह पूर्णत: एकाग्र हो जाता है। तब मन में केवल एक ही चिन्तन अर्थात् वास्तविक लक्ष्य का चिन्तन होता है।

मान लो किसी के मन में ऐसा कोई विचार घर कर लेता है, जो उसके लिये हानिकारक है। यदि वही विचार बार-बार मन में उठता है, तो उस विचार से बचने के लिए क्या उपाय करना चाहिए? इस प्रकार के विचार से मुक्ति पाने के लिए मन में उसके विपरीत यह सोचना होगा कि यह विचार मेरा शत्रु है और मेरी हानि कर सकता है।

स्वामी ब्रह्मानन्द इस समस्या के सन्दर्भ में बच्चे का दृष्टान्त देते हैं – बच्चा नहीं जानता कि विष खाने से क्या होता है, उसके पास विष पड़ा रहे, तो भी वह डरता नहीं। किन्तु हम थोड़ा-सा विष देख लें, तो सिहरकर 'बाप रे' कहते हुए दस कदम पीछे हट जायेंगे, क्योंकि हम जानते हैं कि विष खाने से आदमी मरता है। मन बड़ा विचित्र है, जो सिखायेंगे, वहीं सीखेगा।

अत्यन्त विघ्नकारी और अनिष्टकारी विचारों के विपरीत सकारात्मक विचारों को बारम्बार मानस पटल पर अंकित करना होगा। इस प्रकार अपने आप ही हानिकारक, नकारात्मक विचार मन से चले जाएँगे।

इस प्रकार स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के उपदेश युवा-वर्ग के मार्गदर्शक हैं तथा उन्हें प्रेरणा प्रदान करते हैं।

OOO

कविता

ठाकुर शरण तुम्हारी आया

आनन्द तिवारी 'पौराणिक'

ठाकुर ! शरण तुम्हारी आया ।
भटक रहा था इधर उधर मन, जग-प्रपंच भरमाया ।
रंच मात्र भी मिली न शान्ति, ठाकुर! शरण तुम्हारी आया ।।
अज्ञान-तिमिर में पड़ा रहा, अन्धकूप में फँसा रहा ।
नातों-रिश्तों ने ठुकराया, ठाकुर! शरण तुम्हारी आया ।।
दयानिधे अब कृपा करो, पाप, ताप, अज्ञान हरो ।
विनय अश्रु भर लाया, ठाकुर! शरण तुम्हारी आया ।।

स्वामी ब्रह्मानन्द जयन्ती विशेष

ओंकारेश्वर तीर्थ, माँ नर्मदा और स्वामी ब्रह्मानन्द

डॉ. अन्वय मुखोपाध्याय

सहायक प्राध्यापक, मानविकी व सामाजिक विज्ञान विभाग, आई.आई.टी, खड़गपुर

डॉ. अयोध्याप्रसाद द्विवेदी जी ने अपनी पुस्तक संस्कृति-स्रोतस्विणी नर्मदा में बताया है, माँ नर्मदा के पवित्र जल में साधना के भाव प्रवाहमान हैं। जैसा कि द्विवेदीजी कहते हैं, नर्मदा का भू-खण्ड, उनके वन-जंगलों सहित, हमेशा आध्यात्मिक शान्ति की भावना को उजागर करता है और इसलिए उनके तटों पर साधना की सुविधा प्रदान करता है।[१] आदि शंकराचार्य के गुरुदेव आचार्य गोविन्द पाद, नर्मदा के पावन तट पर ओंकारेश्वर की एक गुफा में गहरी समाधि में लीन थे, जब आचार्य शंकर वहाँ पहुँचे और अपनी अद्वैत वेदान्त की साधना आरम्भ की। तब अपनी दैवीय शक्तियों से आचार्य शंकर ने नर्मदा की बाढ़ को गोविन्दपाद को परेशान करने से रोका।[२] इस प्रकार ओंकारश्वर अद्वैत वेदान्त के दो सबसे बड़े स्तम्भ, आचार्य गोविन्द भगवत्पाद और आचार्य शंकर; दोनों की तपोस्थली है। मेकलसुता भगवती नर्मदा, जिनमें प्रवाहित जल आध्यात्मिक प्रज्ञा का मूर्त रूप है। स्कन्दपुराण में उनकी विशेष महिमा ओंकारश्वर तीर्थ में बतायी गई है –

सर्वत्र सुलभा रेवा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ।
ॐकारे अथ भृगुक्षेत्रे तथा च एव और्वसंगमे।।[३]

जब हम रामकृष्ण मठ और मिशन के प्रथम संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द जी के बारे में सोचते हैं, तो हम अनायास ही अद्वैत-ज्ञान के स्थान पर भगवद्-भक्ति के बारे में विचारशील होते हैं, वहीं दूसरी ओर स्वामी विवेकानन्द के नाममात्र से ही लोगों का ध्यान अद्वैत ज्ञान की ओर चला जाता है। जब हम स्वामी ब्रह्मानन्द के ओंकारेश्वर-आगमन और वहाँ उनकी साधना के बारे में सोचते हैं, तो हमें समझ में आता है कि ब्रह्म-ज्ञान का उनका अपरोक्ष अनुभव कितना अद्भुत था! वस्तुत: भक्ति और ज्ञान हमेशा अविभाज्य है। पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्द जी (राजा महाराज) ने ६ फरवरी, १८९० को वृन्दावन से लिखे एक पत्र में लिखा है। अपनी लम्बी तीर्थ-परिक्रमा के दौरान एक समय, उन्होंने वाराणसी से ओंकारेश्वर की यात्रा करने का निर्णय लिया। वाराणसी में, उन्हें (और स्वामी सुबोधानन्द को) एक साथी मिला, जिसके साथ वे नर्मदा क्षेत्र गए। नर्मदा में स्नान के बाद उन्होंने ओंकारनाथ के दर्शन किये और कुछ समय वहाँ बिताया। उनके द्वारा ओंकारनाथ को 'अति उत्तम' क्षेत्र के रूप में वर्णित किया गया है। उन्होंने उन असंख्य साधु-सन्तों का भी उल्लेख किया है, जिनका निवास स्थान नर्मदा के तट पर था। जैसा कि वे कहते हैं, वे वहाँ एक मठ में रुके थे। वे ओंकारनाथ के अद्भुत प्राकृतिक वातावरण की भी प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि यद्यपि वे वहाँ कुछ और समय बिताना चाहते थे, लेकिन अन्तत: ऐसा नहीं हो सका।[४] यह वर्णन स्वामी प्रभानन्द जी के 'ब्रह्मानन्द चरित' तथा स्वामी नरोत्तमानन्द के 'राजा महाराज' नामक पुस्तकों में थोड़ा विस्तृत रूप में मिलता है। प्रभानन्दजी लिखते हैं कि यद्यपि काशी का वातावरण आध्यात्मिक उत्साह से भरा था, सर्वत्र 'बमबम हर हर' की ध्वनि व्याप्त थी, तथापि स्वामी ब्रह्मानन्द जी की आध्यात्मिक भूख वहाँ शान्त नहीं हुई थी। श्रीश्रीठाकुर जी की पवित्र स्मृतियाँ उन्हें बेचैन कर रही थीं। अन्तत: वे नर्मदा की यात्रा के लिये इच्छुक हो गये। जैसा कि प्रभानन्दजी हमें बताते हैं, उनके मन में लम्बे समय से नर्मदा के तट पर साधना करने की इच्छा थी। इस बीच, एक बंगाली परिव्राजक (उनके सहयात्री, ब्रह्मानन्दजी ने अपने पत्र में जैसा उल्लेख किया है) ने ब्रह्मानन्दजी से उन्हें अपने साथ जाने की अनुमति देने का अनुरोध किया। इसलिए, उन्होंने, सुबोधानन्दजी और उस बंगाली परिव्राजक ने ओंकारेश्वर की ओर यात्रा आरम्भ की। स्वामी प्रभानन्द जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि ओंकारेश्वर वह तीर्थ था, जहाँ ब्रह्मानन्दजी लम्बे समय से जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखते थे। आचार्य शंकर और उनके महान अध्यात्मिक जीवन के संस्मरणों की गहराई से ओत-प्रोत इस क्षेत्र ने ब्रह्मानन्दजी के मन को गहन रूप से आकर्षित

किया।[५] इसके फलस्वरूप परवर्ती काल में राजा महाराज ने कई अध्यात्म-पिपासुओं को नर्मदा क्षेत्र में साधना करने को प्रेरित भी किया है। स्वामी प्रभानन्द और स्वामी नरोत्तमानन्द; दोनों की पुस्तकों में समान रूप से इसका उल्लेख मिलता है, स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने ओंकारेश्वर में एक दशनामी मठ में प्रवास किया था।[६] हमें स्वामी सुबोधानन्द जी से पता चलता है कि स्वामी ब्रह्मानन्द ओंकारेश्वर में लगातार छह दिनों तक निर्विकल्प समाधि में थे – बिल्कुल पारलौकिक आनन्द में लीन।[७] इस सन्दर्भ में स्वामी नरोत्तमानन्द हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखते हैं कि राजा महाराज परवर्ती काल में कहा करते थे कि निर्विकल्प समाधि के बाद ही वास्तविक धार्मिक या आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ होता है। ऐसी निर्विकल्प समाधि का अनुभव ही पूज्यपाद महाराज को ओंकारनाथ में हुआ था।[८]

स्वामी देवानन्द जी के अनुसार राजा महाराज से दीक्षा प्राप्त करने के बाद, महापुरुष महाराज ने उन्हें बताया था कि श्रीमाँ, श्रीठाकुर, स्वामीजी और राजा महाराज एक और अविभाज्य हैं, बिल्कुल अभिन्न।[९] स्वामी ब्रह्मानन्द जी का ओंकारनाथ में प्रवास और वहाँ उनकी निर्विकल्प समाधि यह संकेत देती है कि सम्भवत: निर्विकल्प समाधि की इसी अवस्था में उन्होंने ठाकुरजी के साथ अपने एकत्व का अनुभव किया था और प्रभानन्दजी के अनुसार 'बृज वाला' ठाकुरजी के तिरोभाव के बाद उनकी सर्वव्यापी एकात्मता में लीन हो गये थे।[१०] प्रणव-स्वरूप परब्रह्म जो ओंकारक्षेत्र में अपने अद्वितीय पारलौकिक रहस्यों को प्रकट करता है, जहाँ भगवान शिव के ज्योतिर्लिंग का नाम ओंकारेश्वर है तथा कावेरी और नर्मदा के संगम पर मान्धाता पर्वत, जिस पर ओंकारेश्वर मन्दिर स्थित है, का आकार भौतिक रूप से भी प्रणवाकार जैसा है, वस्तुत; ओंकार का प्रतीक ही है।[११] हम सभी जानते हैं, ओंकार ब्रह्म का सर्वोच्च प्रतीक है। दूसरे शब्दों में, ओंकारेश्वर क्षेत्र वह स्थान है, जहाँ व्यक्ति सर्वव्यापी प्रणव-स्वरूप ब्रह्म के साथ एक हो सकता है। यहाँ इस परम पवित्र स्थान पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी स्वयं ब्रह्मानन्द में – ब्रह्म की आध्यात्मिक अनुभूति से प्रवाहित होने वाला महनीय आनन्द में विलीन हो गये थे। क्या ये ठाकुरजी स्वयं थे, जो ब्रह्मानन्द के शाश्वत आध्यात्मिक स्वरूप हैं?

जब हम बेलूड़ मठ जाते हैं, तो वहाँ स्वामी ब्रह्मानन्द स्मृति मन्दिर में हमें महाराज की संगमरमर की प्रतिमा के सामने बाल-गोपाल की छोटी मूर्ति देखने को मिलती है। यह हमारी कल्पना में राजा महाराज को तत्क्षण कृष्ण-भक्ति के साथ जोड़ देती है, ओंकार के विपरीत, जो अद्वैत ज्ञान का प्रतीक है, जिसे हम मठ में स्थित स्वामी विवेकानन्द के मन्दिर में देखते हैं। जब कोई ओंकार-मान्धाता के प्राकृतिक परिदृश्य के बीच ब्रह्मानन्दजी की साधना के प्रसंग पर विचार करता है, जो शारीरिक और आध्यात्मिक रूप से ओंकार की आभा से ओत-प्रोत है, तो उसे समझ में आता है कि परमात्म रूप से भक्ति के अन्तिम स्तर और ज्ञान के परमस्वरूप में कोई अन्तर नहीं है। श्रीरामकृष्ण इन दोनों ही भावनाओं के प्रतीक हैं और उनके मानसपुत्र राखाल (राजा महाराज) स्पष्ट रूप से संयुक्त ज्ञान-भक्ति की इस दिव्य भावना के प्रतिरूप हैं। श्रीरामकृष्ण ज्ञान-मिश्रित भक्ति को आदर्श और श्रेष्ठ बताते हैं। जिस प्रकार, मूलत: ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं है, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी ब्रह्मानन्द, अद्वैतवादी के ओंकार और भक्त के कृष्ण मूर्ति में कोई अन्तर नहीं है, ठीक उसी प्रकार अन्तत: ॐकार जिसे हम ओंकाराकार ओंकारेश्वर-मान्धाता पर्वत के तन पर स्पर्श करते हैं तथा ओंकार जो हमारे हृदय में प्रकाशित होता है, ब्रह्माण्ड की मूल यथार्थता के ध्यान के गहरे आलोक में। ठीक यही ओंकारनाथ क्षेत्र की महिमा है, जिसे माँ नर्मदा की तपोभूमि और साधना-भूमि के शिखर-रत्न के रूप में देखा जा सकता है।

अब ओंकारेश्वर में एकात्म-धाम की स्थापना के साथ, जहाँ रामकृष्ण संघ के संन्यासियों ने एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक और आध्यात्मिक भूमिका निभाई है। हम शंकर भगवत्पाद के अद्वैत वेदान्त की प्राचीन धारा और श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द की आधुनिक अद्वैत वेदान्त की धारा के संगम की प्रशंसा करते हैं, जो निस्संदेह एक और अविभाज्य है। नर्मदा और कावेरी के संगम की तरह सम्भवत: अद्वैत वेदान्त की इन दो धाराओं के संगम से ही एकात्म धाम बनेगा – एक अद्वितीय व आध्यात्मिक रूप से ज्ञानवर्धक स्थान। नर्मदा और कावेरी की तरह आचार्य शंकर द्वारा प्रचारित आध्यात्मिक प्रकाश की धारा और श्रीरामकृष्ण-श्रीमाँ सारदा-विवेकानन्द-ब्रह्मानन्द जी द्वारा प्रचारित आध्यात्मिक धारा ओंकारेश्वर में पारलौकिक ओंकार या प्रणव में एकत्रित होती है, जो परमपुरुष और

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

स्वामी ब्रह्मानन्द जयन्ती विशेष

ब्रह्मानन्द-चरित-गान

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गया, बिहार

ब्रज में बालकृष्ण-संगी बन, निरत जो नित नर्तन ।
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

दक्षिणेश्वर में परमहंस को, मिला दिव्य-संदेश,
जगदम्बा ने कहा, पुत्र तुम पाओगे सविशेष ।
सिहर उठे सुनकर यह प्रभुवर, चिन्ता हुई गहन,
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

कहा जगन्माता ने, पुत्र यह होगा अन्य प्रकार,
सदा संग रहकर देगा, तव भावों को विस्तार ।
त्याग-तपोमय तनय तुम्हारा, होगा मनस-सुवन,
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

जैसे ही दक्षिणेश्वर-मन्दिर, आये श्री राखाल,
विस्फारित नेत्रों से ठाकुर, लगे ताकने भाल ।
सहसा उनके हृदय-प्रान्त में, गूँजा मातृ-वचन,
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

ठाकुर संग अब दक्षिणेश्वर में, होता नित्य निवास,
आध्यात्मिक चर्चायें चलतीं, होता वाग्विलास ।
घोर रात्रि में आसन साधे, करें ब्रह्म-चिन्तन,
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

इसी तरह अनवरत, किया करते थे खूब जतन,
सदा सजग हो गुरुवर, देते रहते निर्देशन ।
परमहंस की परमकृपा से, हुआ तत्त्व-दर्शन,
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

शिष्यों को कर सिद्ध सर्वविधि, गुरु ने किया प्रयाण,
शोकमग्न सब शिष्य, गुरु का करते संतत ध्यान ।
निकल पड़े सब अलग-अलग, करने को तीर्थ-भ्रमण,
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

स्वामीजी का, 'विश्वधर्म सम्मेलन' में व्याख्यान,
सारे भारतवर्ष में लाया, सुन्दर-सुखद विहान ।
सकल राष्ट्र करने को आतुर, उनका अभिनन्दन,
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

विश्वविजय कर स्वामीजी जब लौटे निज प्रिय देश,
गठित किये गुरु भ्राताओं संग, मिलकर संघ विशेष।
सारे जग में है प्रसिद्ध यह, 'रामकृष्ण मिशन'
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

प्रथमाध्यक्ष बने तब ये, राखाल श्री ब्रह्मानन्द,
जिनके कुशल प्रशासन में, मठ का फैला मकरन्द ।
आश्रमवासी आनन्दित, करते साधना-भजन,
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

लीलाधर के लीला-सहचर बन, लीला दिखलाये,
ज्ञान-योग-भक्ति औ कर्म का, गूढ़ मर्म सिखलाये ।
महाराज के चरण-कमल का, करता जग वन्दन,
रामकृष्ण के मानससुत बन, आये पुनः भुवन ।।

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

ब्रह्म है। यह ओंकार जो बनता है, वह हमारी वैदिक परम्परा का मूल और सार्वकालिक हिन्दुओं के लिये ज्ञान के शाश्वत स्रोत के रूप में कार्य करता है। ○○○

सन्दर्भ सूची : १. डॉ. अयोध्याप्रसाद द्विवेदी, संस्कृति स्रोतस्विणी नर्मदा, द्वितीय संस्करण, मंडल गोंडी पब्लिक ट्रस्ट, २०१३, पृ. १२१ **२.** वही, पृ.१२२-१२३ **३.** रेवाखण्ड १४.८५, डॉ. अनन्या दास, माँ नर्मदा के तट पर प्राचीन तीर्थावली, कलकत्ता, अनुपमा प्रकाशन, २०२३, पृ.३७५ **४.** धर्मप्रसंगे स्वामी ब्रह्मानन्द, कलकत्ता उद्बोधन, २०२३, पृ. १३९-१४० **५.** 'ब्रह्मानन्द चरित', लेखक-स्वामी प्रभानन्द, कलकत्ता उद्बोधन, २०२२, पृ. ८४-८५ **६.** ब्रह्मानन्द चरित, पृ. ८५, 'राजा महाराज', लेखक-स्वामी नरोत्तमानन्द, कलकत्ता, उद्बोधन, २०२२, पृ. ५१ **७.** ब्रह्मानन्द चरित, पृ. ८५ **८.** 'राजा महाराज,' पृ. ५२ **९.** 'ब्रह्मानन्द स्मृति'–स्वामी देवानन्द, 'स्वामी ब्रह्मानन्देर स्मृतिकथा, सम्पादक-स्वामी चेतनानन्द, उद्बोधन, कलकत्ता २०२४, पृ. २९३-३०८, पृ. २९८ **१०.** ब्रह्मानन्द चरित, पृ. ८४ **११.** द्विवेदी, पृ. १३७

प्रश्नोपनिषद् (५६)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

भाष्य – यथा राज्ञ: सर्व-अर्थ-कारिणि भृत्ये राजा इति तद्-वत्।

भाष्यार्थ – जैसे राजा के सभी कार्य करनेवाले भृत्य (मंत्री) को भी राजा कहते हैं, वैसे ही (क्या हम पुरुष के लिये कार्य करनेवाली प्रकृति को भी पुरुष नहीं कह सकते?)

समाधान – न; आत्मनो भोक्तृत्ववत्-कर्तृत्व-उपपत्ते:।

– ऐसा कहना ठीक नहीं; क्योंकि (हमारे मत से) आत्मा में भोक्तृत्व के समान ही, उसका कर्तृत्व भी बन सकता है।

भाष्य – यथा सांख्यस्य चिन्मात्रस्य अपरिणामिनो अपि आत्मनो भोक्तृत्वं तद्वद्-एव-आदिनाम् – ईक्षादिपूर्वकं जगत्-कर्तृत्वम्-उपपन्नं श्रुति-प्रामाण्यात्।

भाष्यार्थ – जैसे सांख्य मत में, चैतन्य-मात्र अपरिणामी आत्मा का 'भोक्तापन' सम्भव है, वैसे ही श्रुति प्रमाण से, वेदवादियों के मत में, आत्मा का विचारपूर्वक 'कर्तापन' भी बन सकता है। (सांख्य-मत के अनुसार भोक्ता 'पुरुष' और कर्ता 'प्रकृति' है।)

शंका – तत्त्व-अन्तर-परिणाम आत्मन: अनित्यत्व-अशुद्धत्व-अनेकत्व-निमित्त: न चिन्मात्र-स्वरूप-विक्रिया, अत: पुरुषस्य स्वात्मनि एव भोक्तृत्वे चिन्मात्र-स्वरूप-विक्रिया न दोषाय।

– (सांख्यों के मतानुसार) आत्मा का तत्त्वान्तर परिणाम – उसके चिन्मात्र स्वरूप का विकार नहीं, अपितु उसकी अनित्यता, अशुद्धता तथा अनेकत्व के कारण है। अत: पुरुष का स्वयं में ही भोक्तृत्व होने के कारण उसके चिन्मात्र-स्वरूप में विकार तो होता है, परन्तु उसमें (परिच्छिन्नता, अनित्यता, आदि) कोई दोष नहीं बनता।

भाष्य – भवतां पुन: वेदवादिनां सृष्टि-कर्तृत्वे तत्त्व-अन्तर-परिणाम एव-इति-आत्मनो-अनित्यत्व-आदि-सर्व-दोष-प्रसङ्ग इति चेत्।

भाष्यार्थ – फिर, आप वेदवादियों द्वारा आत्मा को सृष्टि का कर्ता मानने से तो उसका तत्त्वान्तर परिणाम ही मानना होगा। इससे आत्मा में अनित्यत्व आदि सारे दोषों का प्रसंग उपस्थित हो जाये, तो!

समाधान – न; एकस्य अपि आत्मन: अविद्यायां विषय-नाम-रूप-उपाधि-अनुपाधिकृत-विशेष-अभ्युपगमाद्-अविद्याकृत-नाम-रूप-उपाधिकृतो हि विशेषो-अभ्युपगम्यत आत्मनो बन्ध-मोक्ष-आदि-शास्त्रकृत-संव्यवहाराय।

– ऐसी बात नहीं है। क्योंकि हम एक ही आत्मा में अविद्या से (प्रतीत) होनेवाली नाम-रूप आदि उपाधियों तथा उनके अभाव से होनेवाली विशेषता को मानते हैं। आत्मा का बन्धन-मोक्ष आदि शास्त्र के व्यवहार के लिए है।

भाष्य – परमार्थत: अनुपाधिकृतं च तत्त्वम् एकम्-एव-अद्वितीयम् उपादेयं सर्व-तार्किक-बुद्धि-अनवग्राह्यम् अभयं शिवम् इष्यते –

भाष्यार्थ – पारमार्थिक रूप से तो, उपाधिरहित उस एक अद्वितीय तत्त्व को ही स्वीकार करना उचित है; वह जो समस्त तार्किकों की बुद्धि का अविषय, अभय तथा कल्याणमय है।

भाष्य – न तत्र कर्तृत्वं भोक्तृत्वं वा क्रिया-कारक-फलं च स्याद् अद्वैतत्वात् सर्व-भावानाम्।

भाष्यार्थ – क्योंकि, आत्मा के समस्त भावों (पदार्थों) के अद्वैत-स्वरूप होने के कारण, उसमें कर्तृत्व, भोक्तृत्व या क्रिया, कारक, फल आदि कुछ भी नहीं होता। **(क्रमश:)**

शिवरात्रि विशेष

भगवान भूतनाथ और भारत

पं. श्री अयोध्यासिंह जी उपाध्याय, 'हरिऔध'

यह कैसे कहा जा सकता है कि भारत के आधार से ही भगवान भूतनाथ की कल्पना हुई है? वे असंख्य ब्रह्माण्डाधिपति और समस्त सृष्टि के अधीश्वर हैं, उनके रोम-रोम में भारत जैसे करोड़ों प्रदेश विद्यमान हैं। इसलिए यदि कहा जा सकता है, तो यही कहा जा सकता है कि उस विश्व-मूर्ति की एक लघुतम मूर्ति भारतवर्ष भी है। वह हमारा पवित्र और पूज्यतम देश है। जब उसमें हम भगवान भूतनाथ का साम्य अधिकतर पाते हैं, तो हृदय परमानन्द से उत्फुल्ल हो जाता है। 'भूत' शब्द का अर्थ है पञ्चभूत अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। उसका दूसरा अर्थ है प्राणिसमूह अथवा समस्त सजीव सृष्टि, जैसा कि निम्नखिलित वाक्यों से प्रकट होता है – 'सर्वभूतहिते रताः।' 'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।'

भूत शब्द का तीसरा अर्थ है – योनि विशेष, जिसकी सत्ता मनुष्य-जाति से भिन्न है और जिसकी गणना प्रेत एवं वेतालादि जीवों की कोटि में होती है। जब भगवान् शिव को हम भूतनाथ कहते हैं, तो उसका अर्थ यह होता है कि वे पञ्चभूत से लेकर चींटी पर्यन्त समस्त जीवों के स्वामी हैं। भारत भी इसी अर्थ में भूतनाथ है। चाहे उसके स्वामित्व की व्यापकता उतनी न हो, बहुत ही थोड़ी समुद्र के बिन्दु बराबर हो, तो भी वह भूतनाथ है। क्योंकि पञ्चभूत के अनेक अंशों और प्राणिसमूह के एक बहुत बड़े विभाग पर उसका भी अधिकार है। यदि वे शशिशेखर हैं, तो भारत भी शशिशेखर है, उसके ललाट-देश में मयंक विराजमान है। उसके ऊर्ध्वभाग में यदि वे सूर्यशशांकवह्निनयन हैं, तो भारत भी ऐसा ही है। क्योंकि उसके जीवमात्र के नियमों का साधन दिन में सूर्य और रात्रि में शशाङ्क एवं अग्नि (अर्थात् अग्निप्रसूत समस्त आलोक) हैं। यदि भगवान शिव के सिर पर पुण्य सलिला भगवती भागीरथी विराजमान हैं, तो भारत का शिरोदेश भी उन्हीं की पवित्रधारा से प्लावित है। यदि वे विभूति-भूषण हैं – उनके कुन्देन्दु-गौर शरीर पर विभूति अर्थात् भभूत विलसित है, जो सांसारिक सर्वविभूतियों की जननी है, तो भारत भी विभूति-भूषण है, उसके अंग में नाना प्रकार के रत्न ही नहीं विराजमान हैं, वह उन समस्त विभूतियों का भी जनक है, जिससे उसकी भूमि स्वर्ण प्रसविनी कही जाती है। यदि वे मुकुन्द प्रिय हैं, तो भारत भी मुकुन्द प्रिय है। क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो वे बार-बार अवतार धारण करके उसका भार निवारण न करते और न उसके भक्ति-भाजन बनते। उनके अंगों में निवास कर यदि सर्प-जैसा वक्रगति भयंकर जन्तु भी सरल गति बनता और विष वमन करना भूल जाता है, तो उनके अंग में निवास करके अनेक वक्र गति प्राणियों की भी यही अवस्था हुई और होती है। भारत की अङ्गभूत आर्य धर्मावलम्बिनी विदेशी जातियाँ इसका प्रमाण हैं। यदि भगवान शिव भुजङ्गभूषण हैं, तो भारत भी ऐसा ही है। अष्टकुल सम्भूत समस्त नाग इसके उदाहरण हैं। यदि वे वृषभवाहन हैं, तो भारत को भी ऐसा होने का गौरव प्राप्त है। क्योंकि वह कृषि-प्रधान देश है और उसका समस्त कृषि-कर्म वृषभ पर ही अवलम्बित है।

भगवान भूतनाथ की सहकारिणी अथवा सहधर्मिणी शक्ति का नाम उमा है। उमा क्या है – '**ह्रीः श्रीः कीर्तिद्युतिः पुष्टिरुमा लक्ष्मीः सरस्वती।**' उमा श्री है, कीर्ति है, द्युति है, पुष्टि है और सरस्वती एवं लक्ष्मीस्वरूपा है। उमा वह दिव्य ज्योति है, जिसकी कामना प्रत्येक तमनिपतित जिज्ञासु करता है। '**तमसो मा ज्योतिर्गमय**' वेदवाक्य है। भारत भी ऐसी ही शक्ति से शक्तिमान है। जिस समय सभ्यता का विकास भी नहीं हुआ था, अज्ञान का अन्धकार चारों ओर छाया हुआ था, उस समय भारत की शक्ति से ही धरातल शक्तिमान हुआ था। उसी की श्री से श्रीमान् एवं उसी के प्रकाश से प्रकाशमान बना। उसी ने उसको पुष्टि दी, उसी की लक्ष्मी से वह धन-धान्य-सम्पन्न हुआ और उसी की सरस्वती उसके अन्ध नेत्रों के लिये ज्ञानाञ्जन-शलाका हुई। चारों वेद भारतर्ष की ही विभूति हैं। सबसे पहले उन्होंने ही यह महामन्त्र उच्चारण किया – '**सत्यं वद धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।**' '**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**' **मा हिंस्यात् सर्वभूतानि**' इत्यादि।

प्रयोजन यह कि जितने सार्वभौम सिद्धान्त हैं, उन सबकी

शेष भाग पृष्ठ ८९ पर

स्वामी ब्रह्मानन्द जयन्ती विशेष

स्वामी ब्रह्मानन्द की काशी-लीला

उत्कर्ष चौबे

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

बाबा विश्वनाथ की दिव्य नगरी काशी को अवतार व उनके पार्षद सदैव भव्यता प्रदान करते रहे हैं। काशी उन्हें भी आकर्षित करती रही है और वे भी इस आकर्षण से स्वयं को रोक नहीं पाये हैं। जो एक बार यहाँ आया, वह यहीं का होकर रह गया अथवा बार-बार आने की अभिलाषा हुई। परम पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज, जो संघ में 'महाराज' के नाम से प्रसिद्ध हैं, वे भी इससे वंचित नहीं रहे। काशी में उनका कई बार आगमन हुआ तथा बहुत दिनों तक महाराज ने यहाँ प्रवास किया। यहाँ तक कि उन्होंने तो प्रिय स्थान भुवनेश्वर में भी जगमोहिनी काशी को ढूँढ़ लिया था और उसे 'गुप्त काशी' कहा करते थे। काशी आगमन के पश्चात्, उनकी काशी प्रीति ऐसी थी कि वे इसे छोड़ना नहीं चाहते थे, किन्तु कभी स्वास्थ्य-लाभ हेतु अथवा कभी आवश्यक दायित्वों के निर्वहन हेतु उनको यहाँ से प्रस्थान करना पड़ता था।

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, काशी के भवन की पहली मंजिल के निर्माण के बाद उन्होंने २३ जनवरी, १९२१ को आश्रम में पुन: प्रवास किया और सबसे पश्चिमी कोने वाले कक्ष में रुके, जिसे 'बंगाल-माई' (पूर्वी बंगाल अर्थात् वर्तमान बांग्लादेशवासी एक महिला) द्वारा प्रदत्त दान से बनाया गया था। वे उस कक्ष में पहली बार रुके। महाराजजी का आदेश था कि सन्ध्या वेला में उनके पास कोई न जाये, जिससे उनके साधन-भजन में व्यवधान न हो। एक दिन महाराजजी के सेवक स्वामी निर्वाणानन्द जी ने भोजन-कक्ष से सहसा किसी वृद्ध को सीढ़ियों से ऊपर द्वितीय तल पर उनके कमरे की ओर जाते देखा। उसी समय स्वामी विशुद्धानन्द जी को भी अचानक ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी ने महाराजजी के कक्ष में प्रवेश किया है। निर्वाणानन्दजी ने महाराजजी के कमरे का दरवाजा सहसा धक्का देकर खोला, तो देखा कि वहाँ कोई नहीं है। तब उन्होंने महाराज से पूछा कि कोई अज्ञात व्यक्ति आया था क्या? उन्होंने पूछा, तुमने भी देखा क्या? तत्काल उन्हें जाने को कहा। बाद में उन्होंने निर्वाणानन्दजी से कहा था कि वह अशरीरी (विदेह) आत्मा आयी थी। वह कोई सिद्ध योगी थे, जो सूक्ष्म शरीर धारण कर महाराज के दर्शन हेतु उनके पास आए थे।

अद्वैत आश्रम के उसी कक्ष में निवास करते समय राजा महाराज ने सेवाश्रम के एक वृक्ष पर एक प्रेतात्मा को भी देखा था। मोक्षनगरी काशी में प्रेतात्मा का वास सुनने में तर्क-संगत नहीं लगता, किन्तु शास्त्रों में ऐसा वर्णन है। कुछ धर्मात्मा प्राणी, जिनकी आकस्मिक मृत्यु होने पर प्रेतयोनि प्राप्त होती है, किन्तु उनके सत्स्वभाव व संचित पुण्यों के कारण उन्हें भी विश्वेश्वर की नगरी में शरण प्राप्त होता है। महाराज ने कहा था कि पूर्व संस्कारवशात् ऐसे प्रेतात्मा किसी को क्षति नहीं पहुँचाते। उन्होंने सेवाश्रम के साधुओं को आदेश दिया कि वे कभी भी उसके आश्रय स्थल उस वृक्ष को न काटें तथा उसके काशीवास में बाधा न बनें। सम्भवत: पूर्व संस्कारवशात् ही उस प्रेतात्मा ने उभय आश्रमों के साधुओं का पावन संग करने के लिए उस वृक्ष पर आश्रय लिया था।

अद्वैत आश्रम के उसी कमरे में रहते समय एक और अलौकिक घटना घटी। स्वामी निर्वाणानन्द जी ने सहसा ही मध्य रात्रि में देखा कि महाराजजी के कमरे की लाइट जली हुई है। उन्हें लगा कि महाराजजी को कुछ आवश्यकता हो। जब उन्होंने महाराज के कक्ष में प्रवेश किया, तो देखा कि महाराज स्वसंकलित श्रीरामकृष्ण उपदेशावली की डायरी में

कुछ संशोधन कर रहे हैं। निर्वाणानन्दजी ने इतनी रात में डायरी में कुछ लिखने का कारण पूछा, तो महाराज ने बताया कि ठाकुर ने स्वयं प्रकट होकर संकलित उपदेशों में संशोधन करने को कहा था। वही कार्य महाराज उस समय कर रहे थे।

स्वामी सारदानन्द जी ने काशी में अगल-बगल स्थित दोनों आश्रमों के आश्रमिकों में हुए कुछ मतभेदों को सुलझाने के लिए स्वामी ब्रह्मानन्दजी को लाने की व्यवस्था की थी, क्योंकि वे स्वयं इसके समाधान में विफल रहे थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने आश्रम में निवास कर साधुओं को जप, ध्यान, धार्मिक प्रवचन, कीर्तन आदि में ऐसा लीन कर दिया कि इससे उत्पन्न आध्यात्मिक लहर से सभी समस्याओं का समाधान हो गया।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

उसी वर्ष ३० जनवरी, १९२१ को स्वामी विवेकानन्द की शुभाविर्भाव तिथि (माघ कृष्ण सप्तमी) के शुभ दिन पर, उन्होंने २० लोगों को संन्यास व १५ ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचर्य-दीक्षा-दान कर मठ में स्थान दिया। अगले १० फरवरी को उनकी जन्मतिथि भी भव्य रूप से मनाई गई। ठाकुरजी को विभिन्न प्रकार के भोग दिये गये। २०० भक्तों ने प्रसाद पाया और रात में प्रतिमा लाकर काली-पूजा हुई। पूजा के अन्त में उस रात भी चार लोगों को संन्यास-दीक्षा मिली। दूसरे दिन महाराजजी की इच्छा से तीन कुमारियों की पूजा की गई। स्वामी अपूर्वानन्द जी लिखते हैं कि महाराज जी की उपस्थिति से मानो काशी में आध्यात्मिक लहरों की बाढ़ आ गई थी।

दक्षिण से प्रभावित होकर महाराज ने भुवनेश्वर में रामनाम-संकीर्तन करवाया था। काशी में आकर उन्होंने उसमें आवश्यक संशोधन और मानस के श्लोकों से आवृत करके वर्तमान स्वरूप दिया। सेवाश्रम के वर्तमान केन्द्रीय कार्यालय में ही उन्होंने प्रथम बार इसका गायन किया तथा महावीर हनुमान जी के दर्शन किये। तत्पश्चात् अपने प्रवास-काल में वे फाल्गुन कृष्ण एकादशी, ४ मार्च को रामनाम-संकीर्तन के लिए मठवासी संन्यासियों और ब्रह्मचारियों के साथ संकटमोचन मन्दिर गये। वहाँ उन्हें एक बूढ़े ब्राह्मण के वेश में श्रीमहावीर हनुमान जी का पावन दर्शन मिला। परम्परानुसार आज भी प्रत्येक मास की दोनों एकादशियों में कार्यालय खाली कराकर रामनाम संकीर्तन होता है तथा फाल्गुन एकादशी को संकटमोचन मन्दिर में सामूहिक कीर्तन होता है।

११ मार्च, १९२१ अद्वैताश्रम के लिए विशेष रूप से स्मरणीय है, जब भगवान श्रीरामकृष्ण की शुभाविर्भाव तिथि के अवसर पर, विशेष पूजा की गई और श्रीरामकृष्ण की पुरानी लिथोग्राफ, जिसकी लम्बे समय से पूजा की जा रही थी, उसे एक नई तस्वीर से बदल दिया गया और लिथोग्राफ को अन्दर रखा गया। इस अवसर पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी के साथ स्वामी सारदानन्द, स्वामी तुरीयानन्द और स्वामी सुबोधानन्द भी उपस्थित थे। उपस्थित सभी लोगों ने बड़े उत्साह के साथ ठाकुर बाड़ी के शताब्दी प्राचीन दुर्गा मंडप में 'एसेछे नूतन मानुस ..' (आये हैं एक नये मानव...) भजन गाते हुए नृत्य किया। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने पुष्पांजलि अर्पित कर आरती की। उस समय कुछ संन्यासियों ने उनमें परमानन्द की मनोदशा देखी। उस दिन उन्होंने पाँच ब्रह्मचारियों को ब्रह्मचर्य-दीक्षा दी और नौ अन्य को संन्यास भी दिया। यह उनकी काशी की अन्तिम यात्रा थी। १५ मार्च को उन्होंने काशीधाम से बेलूड़ मठ हेतु प्रस्थान किया।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी की सुभाष चन्द्र बोस के भावी जीवन को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। बहुत दिनों तक एक ऐसी घटना जिसे कुछ कारणों से सार्वजनिक नहीं किया गया, उसका उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। यह स्मृति सुभाषचन्द्र बोस के लिए इतनी पवित्र व अविस्मरणीय थी कि उन्होंने इसके बारे में कुछ संकेत ही दिया, अपनी आत्मकथा An All Indian Pilgrim में सीधे उल्लेख नहीं किया। युवा सुभाष ने हिमालय में अपने भ्रमणशील अध्याय के अन्त में वाराणसी के रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम में कुछ दिन विश्राम किया। महाराजजी से संन्यास लेने हेतु सुभाष काशी सेवाश्रम आये थे। स्वामी शंकरानन्द जी जो उनके साथ थे, उनकी स्मृतियों के अनुसार, एक युवा लड़के ने सेवाश्रम के परिसर में प्रवेश किया। महाराज उस समय काशी प्रवास पर ही थे। स्वामी ब्रह्मानन्द ने यह जाँचने के लिए कहा कि क्या वह जानकीनाथ बोस का बेटा है, जो कटक से लापता हो गया था (और वास्तव में वह वही थे)। स्वामी ब्रह्मानन्द जानकीनाथ बोस को जानते थे, जो कटक के एक प्रभावशाली व्यक्ति थे। सुभाषचन्द्र बोस की माँ प्रभावती देवी

श्रीरामकृष्ण की भक्त थीं। एक सामान्य मित्र बलराम बोस के चचेरे भाई हरिवल्लभ बोस रहे होंगे, जो श्रीरामकृष्ण के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने अमूल्य महाराज से लड़के की अच्छी तरह से देखभाल करने के लिए कहा था। 'एन ऑल इण्डियन पिलग्रिम' में सुभाष ने केवल यही उल्लेख किया था कि स्वामी ब्रह्मानन्द ने उन्हें अपने घर वापस जाने को कहा था। यद्यपि अपने मित्र दिलीप कुमार रॉय के साथ एक निजी बातचीत में उन्होंने स्वीकार किया कि स्वामी ब्रह्मानन्द ने उन्हें वह पथ दिखाया था कि उन्हें देश के लिये काम करना है और उन्हें उस समय संन्यास नहीं लेना चाहिए। उन्होंने दिलीप को यह भी कहा था कि स्वामी ब्रह्मानन्द जी आध्यात्मिक रूप से एक शक्तिशाली व्यक्ति थे, जैसाकि श्रीरामकृष्ण ने उनके बारे में भविष्यवाणी की थी और उनकी कृपा ने ही सुभाष के जीवन की दिशा बदल दी। सुभाषचन्द्र के शब्दों में ''ऐसे महान व्यक्ति की कृपा से जीवन की पूरी दिशा बदल सकती है, मैंने उनकी कृपा प्राप्त की भी।'' उन्होंने अपने परवर्ती जीवन को आकार देने में स्वामी ब्रह्मानन्द जी के प्रभाव के विषय में भी नरेन्द्र नारायण चक्रवर्ती को बताया – ''योगियों में किसी के पूरे जीवन को देखने की विशेष दृष्टि और क्षमता होती है। उन्होंने मुझे संघ में सम्मिलित नहीं कर काशी से वापस देशमाता की सेवा के लिए भेजा था।''

सन् १९१२ में श्रीमाँ सारदा के मासव्यापी काशी-प्रवास में श्रीमाँ को एक दिन सारनाथ के दर्शन कराने ले जाया गया। ब्रह्मानन्दजी महाराज और कई अन्य लोग उस दिन सारनाथ गये। वापस लौटते समय महाराज ने माँ को उस घोड़े-गाड़ी में भेज दिया, जिसमें वे स्वयं जा रहे थे और जिस गाड़ी में माँ जा रही थीं, उसमें स्वयं चले गये। कुछ दूर जाने से पहले टांगे के पीछे वाला घोड़ा अचानक पागल हो गया, रास्ता भटक गया और टांगा पास के मलबे से टकरा गया। महाराज के कोमल शरीर में चोट आई और रक्त निकल गया। माँ ने जब यह सुना तो कहा, 'यह चोट लगना मेरे भाग्य में लिखा था, किन्तु राखाल ने जबरदस्ती अपनी गर्दन पर खींच लिया।'' महाराज के टांगे में दो-तीन साधु और भी थे। उनलोगों को जब प्रतीत हुआ कि अब चोट लगनेवाली है, तो वे जोर से कह पड़े 'अपना सिर बचा लो', उन्होंने दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ लिया, और जैसे ही उन्हें चोट लगी, उन्होंने भावुक होकर गाया – 'सुखेर बासना करो आर क दिन'। अर्थात् सुख की वासना और करोगे कितने दिन? छोड़ो अन्य बोल, काली-काली बोल, जीवन है जितने दिन।'

श्रीमाँ किसी भी समस्या का समाधान करने में पारंगत थीं। इसका सटीक उदाहरण काशी में महाराज के प्रश्न के समाधान में ही मिलता है। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने श्रीमाँ से कहा, ''सेवा करना बहुत कठिन है। सेवाश्रम गरीबों के लिए बनाया गया है। लेकिन सभी बड़े लोग आते हैं और चिकित्सा कराते हैं, दवा लेते हैं। वे अपने खर्च पर सब कुछ कर सकते हैं। लेकिन वे चाहते हैं कि उन्हें यहीं दवा दी जाए, चिकित्सा की जाए?'' माँ कहती हैं, ''बेटा, दवा दो, चिकित्सा करो। हम सब समान हैं, धनी-गरीब या अन्य नहीं। बेटा, जो भी माँगे, वह गरीब ही है।''

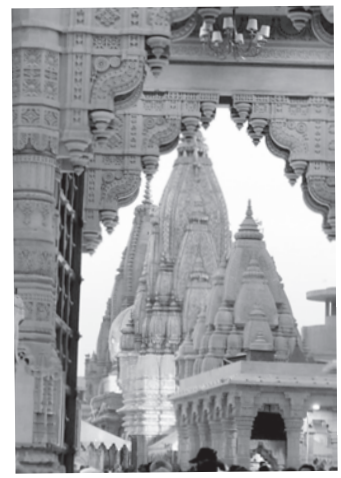

महाराजजी एक दिन भगवान विश्वेश्वर के दर्शन को एकदम भाव-गंभीर अवस्था में कर-जप करते हुए जा रहे थे। बाबा विश्वनाथ के प्रांगण में उन्होंने एक सेवक को देखा, जो झाड़ू लगा रहा था। महाराजजी ने तुरन्त उससे झाड़ू माँगा और स्वयं पूरे मन्दिर-प्रांगण को निष्ठा व भक्ति से साफ करने लगे। सफाई पूर्ण होने पर उन्होंने मन्दिर में प्रवेश करते हुये कहा – ''अहा ! क्या बात है ! बाबा के दरबार में जो एक झाड़ूदार है, मैं भी वहीं हूँ। विश्वनाथजी का एक दीन-हीन सेवक।'' एवं यह भाव उनके जीवन में प्रस्फुटित हो गया।

महाराजजी जब भी काशी प्रवास पर होते, तब वे अद्वैताश्रम में निवास करते थे। महापुरुष स्वामी शिवानन्द जी और ठाकुरबाड़ी के द्वितीय महन्त स्वामी निर्भरानन्द जी सदा काली पूजा का आयोजन करते थे। महाराज की उपस्थिति में दुर्गा- मण्डप में कई बार काली-पूजा होती थी। इस प्रकार स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने १९०३ से कई बार अद्वैत आश्रम में प्रवास किया और कई अवसरों पर दुर्गा-पूजा, काली-पूजा और जगद्धात्री पूजा जैसे समारोहों का आयोजन करवाया। एक बार स्वामी प्रेमानन्द जी, स्वामी तुरीयानन्द जी, स्वामी निर्मलानन्दादि कई संन्यासियों की उपस्थिति में काली-पूजा का आयोजन हुआ। स्वामी आत्मानन्द (सुकूल

महाराज) पुजारी और स्वामी अम्बिकानन्द जी तन्त्रधारक थे। दूसरे दिवस मध्याह्न १२ बजे तक अमावस्या होने के कारण इन लोगों ने राजा महाराज से विशेष आग्रह किया कि प्रात:काल भी पूजा करके ही प्रतिमा निराजन किया जायेगा। महाराज ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। रात्रिव्यापी पूजा प्रात: ०४:३० बजे हवन के पश्चात् समाप्त हुई। सभी लोग कुछ देर विश्राम करने गए, क्योंकि पुन: प्रात:कालीन पूजा होगी। किन्तु स्वामी निर्भरानन्द (चन्द्र महाराज) ने देखा कि महाराजजी माँ काली के पास गये और १ घण्टे तक वहीं बैठे रहे जब तक तुलसी महाराज ने सभी को प्रसाद पाने के लिये नहीं बुलाया। एक छोटे बालसुलभ भाव के साथ न जाने उन्होंने माँ से कितनी बातें कीं। प्रसाद में महाराज को सौंफ का कारण (तांत्रिक पूजा में प्रयोग होने वाला एक प्रकार का विशेष पेय) दिया गया, जिसमें उन्होंने जल मिलाया, जिससे उसका रंग दूध की तरह उज्ज्वल हो गया। महाराज ने कहा – देखो बाबूराम भाई, मैंने कैसे इसे दुग्ध सदृश बना दिया। फिर सबको पिलाया और पुजारी-तंत्रधारक को देते हुए कहा – 'लो, पी लो। पीने से पूजा में मन लगा रहेगा।' मध्याह्न १२ बजे भोगारती के साथ पूजा समाप्त होने पर महाराजजी ने स्वामी अम्बिकानन्द जी से कहा – 'अरे यह भजन गाओ, तो देखें – हे रे हर मनमोहिनी ! कौन कहता है तुम्हें काली लड़की? यदि चक्षु नहीं है, तो लेकर देखो, मेरी माँ ही तो है जग की ज्योति।'

महाराजजी की अद्‌भुत कार्यकुशलता व नेतृत्व क्षमता को देखते हुए स्वामीजी ने उन्हें राजा शब्द से विभूषित कर प्रथम संघाध्यक्ष का कार्य-भार सौंपा था। हमारी भारतीय परम्परा भी रही है कि यशस्वी राजा अपने राज्य को सम्भालने के कुछ वर्षों पश्चात् प्रजा-पालन हेतु अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करता है। उसी परम्परा का निर्वहण हम महाराजजी के जीवन में भी देखते हैं। सन् १९०८ में पुलीन बाबू की विशेष प्रार्थना पर राजा महाराज ने काशी अद्वैत आश्रम में 'कलि के अश्वमेध यज्ञ' अर्थात् प्रतिमा में दुर्गा महापूजा का आयोजन करवाया था। इसके पश्चात् १९१३ में ठाकुरजी के परम भक्त नवगोपाल घोष की भक्तिमती धर्मपत्नी निस्तारिणी देवी के विशेष आग्रह पर महाराज ने स्वयं अद्वैत आश्रम में उपस्थित होकर दुर्गोत्सव की भव्य व्यवस्था की थी। विशेष रूप से बंगाल के बाहर भारत के विभिन्न प्रान्तों में प्रतिमा में शारदीय महापूजा का प्रवर्तन करना राजा महाराज के जीवन का श्रेष्ठ योगदान है। काशी में उनके द्वारा प्रवर्तित पूजा आज भी अनवरत चली आ रही है, किन्तु इसके अलावा भी उन्होंने सन् १९१२ में कनखल में तथा १९२१ में मद्रास मठ में पूजा का आयोजन करवाया था। जिस प्रकार दश अश्वमेध यज्ञ करके ब्रह्माजी प्रजापति हुए थे, ठीक उसी प्रकार महाराज ने भी कलयुग में किये जानेवाले अश्वमेध यज्ञ को करके प्रजापालक राजा महाराज हुए।

काशी में ब्रह्मानन्द-लीला-कथा का कोई अन्त नहीं है। लिखा जाये तो न जाने कितनी ही अलौकिक व दिव्य घटनायें मिलेंगी, किन्तु एक घटना का उल्लेख कर यहीं इस आलेख को समाप्त करता हूँ। १९१२ के काशी प्रवास में श्रीमाँ सारदा देवी लक्ष्मी-निवास में रह रही थीं। महाराजजी प्रतिदिन प्रात: गोलाप माँ से श्रीमाँ का कुशल समाचार लेने के लिए लक्ष्मी-निवास जाते थे। एक दिन गोलाप-माँ ने ऊपरी बालकनी से कहा (श्रीमाँ व गोलाप-माँ उस घर के ऊपरी मंजिल में रहती थीं), राखाल, माँ पूछ रही हैं कि शक्ति-पूजा पहले क्यों की जानी चाहिए?' महाराजजी ने उत्तर दिया, 'माँ के पास ही तो ब्रह्मज्ञान की चाबी है, यदि माँ चाबी से दरवाजा नहीं खोलेंगी, तो कोई और मार्ग नहीं है।' यह कहते हुए वे बाउल की धुन पर भजन गाने लगे और गाते-गाते उत्साह से नाचने लगे। श्रीमाँ ऊपर से महाराज की इस अद्‌भुत अभिव्यक्ति और नृत्य को देखकर आनन्द ले रही थीं। महाराज जोर से गा रहे थे –

शंकरी-चरण में मन मग्न होकर रहो रे।
मग्न होकर रहो रे, सब यन्त्रणा भुलाओ रे।।...
ये तीनों लोक हैं मिथ्या, मिथ्या क्यों घुमे जाओ रे।
कुल कुण्डलिनी ब्रह्ममयी माँ को हृदय में ध्याओ रे।।
कमलाकान्त की वाणी श्यामा माँ के गुण गाओ रे।
यह तो है सुख की नदी निरवधि धीरे-धीरे बहे जाओ रे।।

○○○

सहायक ग्रन्थ – **१.** देवलोके – स्वामी अपूर्वानन्द **२.** ब्रह्मानन्द लीलाकथा – ब्रह्मचारी अक्षय चैतन्य **३.** ब्रह्मानन्द चरित – स्वामी प्रभानन्द **४.** राजा महाराज – स्वामी नरोत्तमानन्द **५.** शतवर्षे दू टी फूल **६.** १०० इयर्स आफ काशी अद्वैत आश्रम **७.** ब्रह्मानन्द पत्रावली – स्वामी ऋतानन्द

शिवरात्रि विशेष

कैलास और शिवतत्त्व

ओमप्रकाश श्रीवास्तव

शिव का अर्थ है – आनन्द, कल्याण, परम मंगल। कैलास को देखकर जो आन्तरिक आनन्द की अनुभूति होती है, वह शिवतत्त्व की हलकी-सी झलक देती है। शिव को महाशक्तिर्महाद्युति: अनन्त शक्ति एवं श्रेष्ठ कान्ति से सम्पन्न कहा जाता है। कैलास अपने स्वामी शिव की तरह ही अनन्त शक्ति सम्पन्न प्रतीत होता है। उसकी उज्ज्वल कान्ति तो देखते ही बनती है। विगाल: अर्थात् अपनी जटा से गंगाजी के जल को टपकाने वाले शिव की तरह ही कैलास से निकलने वाली नदियाँ, विशेषकर कैलास से गिरने वाले झरने शिव की जटाओं से गंगा के निकलने का स्मरण कराते हैं। हमारे शरीर का ७० प्रतिशत भाग जल से बना है। जल ही प्राण का आधार है। कैलास से निकलने वाली नदियाँ और झरने इसी प्राणतत्त्व को प्रसारित करते हैं। विश्व की एक-चौथाई जनसंख्या का भरण-पोषण कैलास से निकलने वाली नदियों के जल से ही होता है। कैलास प्राणतत्त्व का आधार है।

कैलास पर छाया हिम, भस्म-सा प्रतीत होता है। भस्म संसार की अनित्यता का बोध कराती है। शिव भस्म धारण करने के साथ मस्तक पर त्रिपुण्ड्र भी लगाते हैं। त्रिपुण्ड्र की तीन रेखाएँ प्रणव के तीन अक्षरों – अकार, उकार और मकार की प्रतीक हैं। ये तीन रेखाएँ तीन लोकों की प्रतीक हैं, जिनके संहार का कार्य शिव करते हैं। कैलास के दक्षिणी पार्श्वपर शिव का मुख और उस पर त्रिपुण्ड्र स्पष्ट प्रतीत होता है।

कैलास पर सीढ़ीनुमा संरचना रुद्राक्ष के सदृश है। शिव रुद्राक्ष धारण करते हैं। रुद्राक्ष बीज है, जिसमें वृक्ष समाया हुआ है। संसार का पालन-पोषण करनेवाले देवता विष्णु फल-फूल से युक्त हैं, जो जीवों के पालन-पोषण और आनन्द-प्रमोद के लिए आवश्यक है। परमब्रह्म शिव फल-फूल, जो वृक्ष (संसार) के कारण उत्पन्न हुए हैं की तुलना में बीज पर ध्यान देते हैं, जो संसाररूपी वृक्ष के उद्भव का आदि कारण है। रुद्राक्षस्वरूप कैलास हमारे ध्यान को सृष्टि के मूल तत्त्व की ओर आकर्षित करता है।

साकार रूप में शिव की आँखें अर्धनिमीलित हैं। वे आन्तरिक दृष्टिसम्पन्न हैं। वे प्रकृति द्वारा उद्भूत सांसारिक चीजों से असम्पृक्त हैं। इसी प्रकार निराकार शिवलिंग के रूप में कैलास मौसम के पल-पल बदलते झंझावातों के विरुद्ध अचल समाधि में ध्यानमग्न खड़ा है। उसका श्वेत स्वरूप चारों ओर के काले-भूरे पहाड़ों से पूर्णत: पृथक् है। इस बाहरी पृथक्ता से उसे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह आत्मानन्द में मग्न है।

आकाश में ध्रुवतारा अपने स्थान पर अचल रहता है। यह सदैव उत्तर में अपने स्थान पर ही उदित होता है। भारत से यह तारा उत्तर में दिखायी देता है, परन्तु कैलास जाने पर यह तारा ठीक कैलास के ऊपर दिखायी देता है। कैलास और ध्रुवतारा दोनों ही अचलता और स्थिरता के प्रतीक हैं। शिव को 'स्थविरो ध्रुव:' अर्थात् अतिप्राचीन एवं अत्यन्त स्थिर भी कहा गया है।

शिव जगत् के कल्याण के लिए समुद्र-मन्थन से निकले हलाहल को कण्ठ में धारण करते हैं। इसीलिए वे नीलकण्ठ हैं। प्रतीक रूप में देखें, तो वह सृष्टि का ताप और विष, जो कष्ट और मृत्यु के प्रतीक हैं, से बचाते हैं। श्वेत कैलास के नीचे धूसर पहाड़ ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उनका कण्ठ हो, जो विष से नीला हो गया हो। शिव का सामीप्य शान्ति और शीतलता देता है, जो आनन्द और जीवन के प्रतीक हैं। इसीलिए कैलास के चतुर्दिक् गहन शान्ति और शीतलता का साम्राज्य है।

शिव नटराज-स्वरूप में संसार-चक्र की शिक्षा देते हैं। शिक्षा देने की प्रथम प्रणाली बोलना है, जिसमें काल (टाइम) है, पर दिक् (स्पेस) नहीं है। शिक्षा देने की दूसरी प्रणाली शास्त्रों का पठन-पाठन है, जिसमें दिक् है, पर काल नहीं है। शिक्षा देने की तीसरी प्रणाली नृत्य है, जिसकी हर क्षण बदलती मुद्राओं में काल भी है और दिक् भी। नृत्य की एक मुद्रा में जो सृजित होता है, वह अगली मुद्रा में नष्ट हो जाता है और नया सृजन हो जाता है। नये सृजन के लिए निरन्तर गतिमान रहना होता है। इसलिए नटराज के नृत्य से ज्ञान का संप्रेषण सबसे उत्तम ढंग से होता है। कैलास में पल-पल बदलता मौसम ऐसे लगता है, जैसे प्रकृति हर

क्षण अपने नृत्य की मुद्रा बदल रही है। भावरूप में यहीं शिव के नटराज स्वरूप के दर्शन होते हैं।

शिव का वर्ण कर्पूर के समान गौर है, वे करुणा की प्रतिमूर्ति हैं और सारे जगत के सार हैं। सफेद रंग सभी प्रकाश-रश्मियों को वापस कर देता है। उसी प्रकार शिव भी अपने पास कुछ नहीं रखते। उनका सब कुछ लोक-कल्याण के लिए हैं। वे याचक को निष्पक्ष इच्छित वर प्रदान करते हैं। उनका संहार भी नये सृजन का प्रारम्भ है। नया सृजन उनकी ही माया का प्रसार है। कर्पूर सदृश गौरवर्ण शिव यह भी ध्यान दिलाते है कि सांसारिक वैभव भी कर्पूर सदृश बिना कोई अवशेष छोड़े उड़ जाते हैं। कैलास का हिमधवल स्वरूप कर्पूर वर्ण शिव का प्रतीक है। कैलास का हर क्षण बदलता स्वरूप सांसारिक वैभव की अनित्यता बताता है।

शिव प्रत्येक व्यक्ति में आत्मरूप में निवास करते हैं। मैं शिव हूँ, गुरु शिव हैं, तू भी शिव है, सब कुछ शिवमय है, शिव से परे कुछ भी नहीं है। शंकराचार्यजी ने 'आत्मषट्कम्' में आत्मा के बारे में कहा है – मैं निर्विकल्प, निराकार हूँ, सर्वव्यापक हूँ, सदा समभाव में रहता हूँ, न मुक्त हूँ, न बन्धन में हूँ। मैं तो नित्य आनन्द का स्वरूप हूँ। मैं शिव हूँ। मैं शिव हूँ।

शिवतत्त्व बुद्धि से परे है। उसे जानने का एकमात्र उपाय आत्मसाक्षात्कार करना है। शिव को भोला-भाला कहा जाता है। यह भोलापन न तो मूर्ख होने का पर्यायवाची है और न ही चुस्त-चालाक होने से विपरीत भाव। शिव तो ज्ञान के आधार हैं, आदि गुरु हैं। शिव तो परम साक्षी हैं। उनकी शक्ति ने सृष्टि की रचना की और यह सृष्टि प्रकृति या माया के चक्र से घूम रही है। शिव तो भोलेपन से इस खेल को देख रहे हैं। वे सांसारिक शब्दों में भोले कैसे हो सकते हैं? यह भोलापन आन्तरिक शुद्धता का प्रतीक है। शुद्ध चित्त में ही ज्ञान का प्रकाश उपजता है, इसलिए शिव ज्ञान के आधार हैं। कैलास-मानसरोवर, जैसी तीर्थ यात्रायें चित्तशुद्धि का प्रयास है। यदि यह प्रयास सफल हो गया, तो शिवतत्त्व की झलक मिलने लगती है। ○○○ ('कल्याण' से साभार)

पृष्ठ ८३ का शेष भाग

जननी वेदप्रसवकारिणी शक्ति ही है। यह सच है कि ईश्वरीय ज्ञान वृक्षों के एक-एक पत्ते पर लिखा हुआ है। दृष्टिमान प्राणी के लिये उसकी विभूति संसार के प्रत्येक पदार्थ में उपलब्ध होती है। किन्तु ईश्वरीय ज्ञान के आविष्कारों का भी कोई स्थान है। वेद-मन्त्रों के द्रष्टा उसी स्थान के अधिकारी हैं। धरातल में सर्वप्रथम सब प्रकार के ज्ञान और विज्ञान के प्रवर्तक का पद उन्हीं को प्राप्त है। मनु भगवान भी यही कहते हैं –

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।।

अनेक अँग्रेज विद्वानों ने भी भारत-शक्ति के इस उत्कर्ष को स्वीकार किया है और पक्षपातरहित होकर उसकी गुरुता का गुण गाया है। इस विषय के प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं, किन्तु व्यर्थ विस्तार अपेक्षित नहीं। सारांश यह कि भारतीय शक्ति वास्तव में उमा-स्वरूपिणी है। उन्हीं के समान वह ज्योतिर्मयी और अलौकिक कीर्तिशालिनी है। उन्हीं के समान सिंह-वाहना भी। यदि धरातल में पाशवशक्ति में सिंह को प्रधानता है, यदि उस पर अधिकार प्राप्त करके ही उमा सिंह-वाहना है, तो अपनी ज्ञान-गरिमा से धरा की समस्त पाशवशक्तियों पर विजयिनी होकर भारतीय मेधामयी शक्ति भी सिंह-वाहना है। यदि उमा ज्ञान-गरिष्ठ गणेशजी और दुष्ट-दलन-क्षम, परम पराक्रमी स्वामिकार्तिक, जैसे पुत्र उत्पन्न कर सकती हैं, तो भारत की शक्ति ने भी ऐसी अनेक सन्तानें उत्पन्न की हैं, जिन्होंने ज्ञान-गरिमा और दुष्ट-दलन-शक्ति दोनों बातों में अलौकिक कीर्ति प्राप्त की है। प्रमाण में वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, व्यास जैसे महर्षि और भगवान श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्णचन्द्र जैसे लोकोत्तर पुरुष उपस्थित किये जा सकते हैं।

भगवान शंकर और भारतवर्ष में इतना साम्य पाकर कौन ऐसी भारत-संतान है कि जो गौरवित और परमानन्दित न हो? वास्तव में बात यह है कि भारतीयों का उपास्य भारतवर्ष वैसा ही है जैसे भगवान शिव। क्या यह तत्त्व समझकर हमलोग भारत की यथार्थ सेवा कर अपना उभय लोक बनाने के लिये सचेष्ट न होंगे? विश्वास है कि अवश्य सचेष्ट होंगे। क्योंकि भारतवर्ष एक पवित्र देश ही नहीं है, वह उन ईश्वरीय सर्वविभूतियों से भी विभूषित है, जो धरातल के किसी अन्य देश को प्राप्त नहीं। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

तेरहवाँ अध्याय (१३/४)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १३वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।४।।

ऋषिभिः बहुधा (ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से) विविधैः छन्दोभिः पृथक् गीतम् (विविध वेदमन्त्रों में विभागपूर्वक कहा गया है) च विनिश्चितैः हेतुमद्भिः (तथा सुनिश्चित युक्तियुक्त) ब्रह्मसूत्रपदैः एव (ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी)।

''ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से विविध वेद-मन्त्रों में विभागपूर्वक कहा गया है तथा सुनिश्चित युक्तियुक्त ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी (कहा गया है)।''

ऐसा माना जाता है कि भगवान वेदव्यास ने इस वेदान्त दर्शन को समझाने के लिए सूत्रों की रचना की। उन सूत्रों को ब्रह्मसूत्र के नाम से जाना जाता है। उन्हें बादरायण-सूत्र या भिक्षु-सूत्र भी कहते हैं। क्योंकि वहाँ केवल संन्यासियों का अधिकार माना गया है। ब्रह्मसूत्र में ऐसी चर्चा है कि संन्यासी सब कुछ छोड़कर केवल तत्त्व में ही विचरण करता है, इसलिए वह भिक्षु-सूत्र कहलाया। बद्रीनाथ के वन में रहकर उनके रचयिता ने तपस्या की थी, इसलिए उनका नाम पड़ा बादरायण-सूत्र। वेदान्त-सूत्रों को ही ब्रह्मसूत्र नाम से पुकारा गया, क्योंकि जो ब्रह्म संसार में सत्य के रूप में समाया हुआ है, उसी के सम्बन्ध की चर्चा उनमें है। ये ब्रह्मसूत्र कार्य-कारण शृंखला पर आधारित हैं और इनमें वही क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का ज्ञान बताया गया है। ब्रह्मसूत्र में केवल मान लेने की बात नहीं कही गयी है, ये तर्क पर आधारित हैं। जैसेकि विज्ञान के सिद्धान्तों को हम यों ही मान नहीं लेते, वरन् उन्हें समझने के लिए बुद्धि का प्रयोग करते हैं, युक्ति लगाते हैं, तर्क का प्रयोग करते हैं। ऐसे परीक्षित नियम जिन्हें प्रयोग के द्वारा सत्य पाया गया है, वे हैं ब्रह्मसूत्र। उनमें ब्रह्म को, सत्य को विनिश्चित करके रखा गया है। मतभिन्नता का उनमें स्थान नहीं है। ऐसा लगता है, जैसे एक उपनिषद् एक बात कह रहा है, दूसरा उपनिषद् सिद्धान्त को दूसरे ढंग से रख रहा है और हम उन दोनों का ठीक ढंग से मिलान करने में बड़ी कठिनाई का अनुभव करते हैं। दर्शन का एक सिद्धान्त स्थापित करने के लिए भगवान वेदव्यास ने महाभारत की रचना की, पुराण लिखे, श्रीमद्भागवत रचा, पर सबसे बड़ा काम यह किया कि वेदों का विभाजन किया। वेदों का विस्तार भी किया और उनके सिद्धान्तों को क्रम से रखा। फिर ब्रह्मसूत्र का निर्माण किया, जिन्हें पढ़ने से ज्ञात हो कि वही सिद्धान्त उपनिषदों के भीतर हैं। इसीलिए कहा जाता है कि उपनिषदों को समझने के लिए ब्रह्मसूत्र को पढ़ना अनिवार्य है। तत्त्व सम्बन्धी बात को, उसके अर्थ को निश्चित करके उन्होंने युक्तिपूर्वक लिखा। ये दो बातें ब्रह्मसूत्र में प्रधान हैं। ब्रह्मसूत्र में जिस सिद्धान्त की चर्चा की गई, उसको तर्क की कसौटी पर कसा गया और उसे निश्चित करके लिखा गया। पढ़ने पर उसका ठीक तारतम्य मिलता है।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-ज्ञान मन को वश में करने की साधना

भगवान कौन हैं? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं – भिन्न-भिन्न ऋषियों ने भिन्न-भिन्न उपनिषदों में भिन्न-भिन्न छन्दों में जिनका गायन किया है, वही भगवान हैं। इस बात को और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के ज्ञान को जो जान लेगा, वह मुक्त हो जाएगा और मुझे प्राप्त कर लेगा। भगवान को प्राप्त कर लेने या मुक्त हो जाने का अर्थ क्या है? हमारा मन हमको अपने ढंग से चलाता है और हमको कभी-कभी लगता है कि हमारा मन सही रास्ते पर नहीं चल रहा है। उसे हम अपने वश में लाने का प्रयास तो करते हैं, पर वह वश में आता नहीं। हम क्षुब्ध हो जाते हैं और मन जैसा चाहता है, वैसा ही करने लगते हैं। ज्ञान का अभ्यास इसीलिए किया जाता है कि धीरे-धीरे हम मन को पकड़ सकें। मन चंचल घोड़े के समान है, जिसे कुशल सवार धीरे-धीरे अपने वश में ले आता है। जैसे कोई साधक ज्ञानार्जन करके मन को वश में करता है। उसी को मुक्ति की अवस्था कहा, भगवान के दर्शन

की अवस्था कहा, समाधि की अवस्था बताया, अपने-आपको पूर्णतया भगवान में लीन कर देने की अवस्था बताया। शब्द चाहे कोई भी हों, उसी मन को संयम में लाने के लिए सारी साधनाएँ हैं। अर्जुन ने पहले ही कह दिया था –

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। ६/३४

– हे प्रभो! यह मन बड़ा ही चञ्चल है। इसलिए उसको वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यन्त दुष्कर मानता हूँ। अर्जुन जैसा गाण्डीवधारी, महाबाहु, महाबली यह बात कह रहा है, पर भगवान कहते हैं, नहीं अर्जुन! यह असम्भव नहीं है। कठिन अवश्य है। अभ्यास और वैराग्य; इन दो साधनों द्वारा हम मन को वश में लाने का प्रयास करते हैं और उसमें सफलता भी मिलती है। हम यदि प्रश्न करें कि जब एक ही श्लोक में भगवान ने मुक्त होने का साधन बता दिया, तब इतने सारे ग्रन्थों की क्या आवश्यकता थी? तो कहा जाता है कि ये सारे ग्रन्थ इस अभ्यास और वैराग्य को बढ़ाने का उपाय ही तो बताते हैं। फिर क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-ज्ञान भी ऐसी ही शिक्षा की एक प्रक्रिया है कि मन को वश में कैसे लाएँ? मन कोई शरीर तो है नहीं कि कुश्ती लड़कर उसे वश में किया जाए। मन में तो विचार उठेंगे ही। विषय उसके सामने रहते ही हैं, उनका भोग करने के लिए मन इन्द्रियों को उकसाएगा। तो मन को केवल विचारों के धरातल पर हराया जा सकता है। जिसको पकड़ना है, उसके निवास स्थान पर जाकर ही उसे पकड़ा जा सकेगा। घर के अन्धकार में खोई सुई सड़क के लैम्प के प्रकाश में कैसे मिलेगी?

शास्त्रों के जो वचन हैं, वे हमें मन के धरातल पर ले जाते हैं। वे विचार के क्षेत्र में प्रवेश करके मन को चेतावनी देना सिखाते हैं। उनका अपरा प्रकृति है। मन नामक जो यन्त्र है, वह तो साक्षात् भगवान से उत्पन्न हुआ है। यह सारी चर्चा इसलिये है कि हम धारणा कर सकें, अपने विचार को सबल बनाकर मन का सामना कर सकें। मन की उत्पत्ति भी भगवान से हुई है और हमारा उद्गमस्थल भी भगवान ही हैं। अत: अभी भले ही मन से मेरी शत्रुता हो, पर उससे मैत्री अवश्य ही की जा सकती है। मित्रता जब होती है, तो शत्रुता का अस्तित्व स्वत: ही मिट जाता है। शत्रुता रखते हुए बल के आधार पर जिसे पछाड़ा जाता है, उसका सहयोग हमें कभी नहीं मिल सकता, बल्कि आपके अन्य शत्रुओं के साथ मेल बढ़ाकर वह आपका पतन कराना चाहेगा। नम्रता से मित्रता का हाथ बढ़ाकर शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है और सदा उससे सहयोग पाने की आशा की जा सकती है। यही बात मन के साथ भी है। आप यदि ज्ञानी हैं अथवा योगी हैं, तो ताल ठोककर मन के विपक्ष में खड़े हो सकते हैं, उसे पछाड़ सकते हैं। वह एक बार सहम तो जाएगा, पर मौका देखकर बार-बार आपके सामने नए-नए प्रलोभन खड़े करता रहेगा। यदि हर समय आपका विवेक जाग्रत रहेगा, तो आप किसी भी प्रलोभन में फँसकर अवनति की ओर नहीं जाएँगे।

मन के साथ युद्ध करने में जो सक्षम नहीं हैं, उनके लिए दूसरा रास्ता है प्रेम का। वह अपने मन को पुचकारकर कहेगा, 'तुम्हें सौन्दर्य-दर्शन की प्यास है, तो चल मेरे साथ। तुझे ऐसा रूप दिखाऊँगा, जिसे देखने के बाद अन्य किसी रूप को देखने की चाह ही तेरे मन में नहीं रहेगी।' ऐसा रूप है परमात्मा का रूप। स्वाद भी उसकी, सुगन्ध भी उसी की। इसे कहते हैं भक्ति का रास्ता, समर्पण की राह। ये दो उपाय हैं, हमारे सामने मन को वश में करने के। यह दूसरा उपाय इन दोनों से अधिक सुगम है और इसी पर चलना अधिकतर लोग पसन्द करते हैं। समर्पण के राही के लिए ज्ञान की आवश्यकता ही न हो, ऐसी बात नहीं है। भक्त को भी अपने मन का एक ठीक-ठीक भाव तो बनाकर रखना ही पड़ता है। मित्रता तो मन से हो गई, पर उसका विश्वास क्या कि कब उठाकर पटक दे ! उसके प्रति सजग और सावधान रहने के लिए ही ज्ञान की आवश्यकता होती है। जो विचारपूर्वक ताल ठोककर मन के साथ युद्ध करना चाहता है, उसके लिए तो यह तेरहवें अध्याय की चर्चा अत्यन्त उपादेय है ही और दूसरा जो पुचकारकर मन के साथ मैत्री करना चाहता है, उसके लिए भी यह उपयोगी है। ज्ञानी और भक्त; दोनों के लिए इस अध्याय की आवश्यकता है।

शरीर को जाननेवाले को क्षेत्रज्ञ कहा गया। आप कह सकते हैं कि वह तो कोई डॉक्टर या वैद्य ही बता देता, उसके लिए इतनी व्याख्या करने की क्या आवश्यकता थी? तो डॉक्टर या वैद्य शरीर विषयक बहुत-सी बातें जानते तो हैं, यह भी जानते हैं कि शरीर की उत्पत्ति किन-किन तत्त्वों के मेल से होती है, पर वे यह नहीं जानते कि वे तत्त्व कहाँ से पैदा हुए। आयुर्वेद के शास्त्रों में चरक आदि ने दर्शन की बात कही। ब्रह्म का नाम लिया। वे भारतीय थे। आत्मा पर विश्वास करते थे और जानते थे कि उसका लक्ष्य है परमात्मा को पाना। वहाँ तो यह बात संक्षेप में कही गई है और यहाँ भगवान विस्तारपूर्वक तात्त्विक दृष्टि और सिद्धान्त की दृष्टि

से अर्जुन के समक्ष क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ सम्बन्धी विचार रखते हैं, जिन्हें जान लेने के बाद मन पर हावी हुआ जा सकता है, मन को पूरी तरह से जीता जा सकता है।

क्षेत्र-तत्त्व का ज्ञान

जीव के शरीर की संरचना

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः।।५।।
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।६।।

महाभूतानि अहंकार: बुद्धि: च अव्यक्तम् (पंच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति) च दस इन्द्रियाणि (तथा दस इन्द्रियाँ) एकम् च पंच इन्द्रियगोचरा: (एक मन और पाँच इन्द्रियों के विषयों के साथ) इच्छा द्वेष: सुखम् दु:खम् संघात: चेतना धृति: (इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, संघात, चेतना और धृति) सविकारम् एतत् क्षेत्रम् (इन विकारों के साथ यह क्षेत्र) समासेन उदाहृतम् (संक्षेप में कहा गया है)।

''पंच महाभूत, अहंकार, बुद्धि और मूल प्रकृति तथा दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच इन्द्रियों के विषयों के साथ इच्छा, द्वेष, सुख, दुख, संघात, चेतना और धृति इन विकारों के साथ यह क्षेत्र संक्षेप में कहा गया है।''

भगवान बताते हैं, इन पाँच महाभूतों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) के जो स्थूल रूप हैं, इनके पीछे जो सूक्ष्म तत्त्व है, इनकी जो कारणावस्था – पहले की अवस्था है, उसे कहते हैं पञ्चमहाभूत। महा इसलिए कहा कि वह सर्वव्यापी है। जहाँ भी हम जाएँ, यह तत्त्व विराजमान है। पाँच महाभूत, अहंकार, बुद्धि (महत्तत्त्व), अव्यक्त, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच इन्द्रियों के विषय और एक इन्द्रिय मन भी, जिसके संयोजन के बिना शेष दस इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्य ठीक से सम्पादित नहीं कर सकतीं, ये चौबीस तत्त्व हैं। जैसाकि सांख्यवादी मानते हैं, यह संसार प्रकृति से निकला है और प्रकृति अपने-आपको इन चौबीस तत्त्वों में विभक्त करती है। इन्हीं चौबीस तत्त्वों के भीतर इच्छा, द्वेष, सुख-दुख, संघात, चेतना, धृति मिलाकर इसे क्षेत्र कहते हैं। जो पसन्द आया है, उसे वापस पाना चाहें, वह हुई इच्छा। जो पसन्द नहीं आया, उससे दूर रहना चाहें, यह हुआ द्वेष। मन के अनुकूल परिस्थिति सुख और प्रतिकूल परिस्थिति दु:ख, सबको एक साथ जोड़कर रखने की भावना संघात कहलाती है। होश है चेतना और पकड़कर रखने की, नियमन करने की शक्ति का नाम है धृति। ये सभी मिलकर कहे जाते हैं क्षेत्र। यह शरीर है। इसके भीतर की आत्मा सर्वव्यापी है। ब्रह्म भी सर्वव्यापी है। शरीर के भीतर जो सूक्ष्म शरीर है, वह अन्त:करण से बना हुआ है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सबको मिलाकर सूक्ष्म शरीर की जो संज्ञा दी, उसी को बोलचाल की भाषा में मन कहते हैं। मन के भीतर आत्मा को प्रतिबिम्बित करने की क्षमता है। इसीलिए वह आत्मा के चैतन्य से चैतन्यवान होता दिखाई देता है। होने को तो वह जड़ है, पर उसकी जड़ता जरा सूक्ष्म है। इसलिए ऐसा लगता है, जैसे उसमें चेतना है। आत्मा को वह अपने-आपमें प्रतिफलित करता है। मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर या मन, शरीर से बाहर निकल जाता है। उस समय आत्मा भले ही शरीर में विद्यमान है, पर शरीर तो मृतक हो गया। यह जो बोध होता है, वह सूक्ष्म शरीर के कारण होता है। कर्म के जितने संस्कार हैं, वे सूक्ष्म शरीर में लगते हैं। जब जन्म होता है, तब वह आत्मा का नहीं; सूक्ष्म शरीर का होता है।

इस अध्याय का यही अभीष्ट है कि क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान विश्लेषित करके साधक के सामने रख दिया जाए। हम बता चुके हैं कि मन को वश में करने का एक उपाय ज्ञानमार्ग का है और दूसरा उपाय भक्तिमार्ग का। भक्त के लिए भी ज्ञान अपेक्षित है, ऐसा हमने बताया था। ज्ञान के आधार के बिना भक्ति की धारा भी नहीं बहती। जितने भी सच्चे भक्त हो गए, उन्होंने भले ही भक्ति की महिमा गाई, पर ज्ञान की भी उपेक्षा तो नहीं की। इसीलिए हम देखते हैं कि जो भक्ति ज्ञान पर आश्रित है, उस भक्ति में कभी विचलन नहीं होता। इस अध्याय में ज्ञान के साधकों के लिए जो बात कही गई है, वही बात भक्ति के साधकों के लिए भी आवश्यक है। इस दृष्टि से भक्त और ज्ञानी दोनों के लिए समान रूप से इस अध्याय का महत्त्व हो जाता है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को अलग-अलग जान लेने पर समझना चाहिए कि बहुत बड़ी बात हमने जान ली और साधना के लिए हमारी पर्याप्त तैयारी भी हो गई। जैसे यदि पहाड़ पर चढ़ना हो, तो उसके लिए कुछ पूर्व तैयारियाँ आवश्यक हो जाती हैं। उसके बाद जो श्रम लगेगा, वह तो हमें करना ही पड़ेगा। श्रम करते हुए भी हमारे सामने आनेवाली बाधाओं से लड़ने के लिए पदार्थ हमने इकट्ठे कर लिए है। इसलिए निश्चिन्त मन से हम ऊपर जा सकते हैं। **(क्रमशः)**

साधुओं के पावन प्रसंग (७३)

स्वामी पवित्रानन्द

स्वामी चेतनानन्द

स्वामी पवित्रानन्द जी महाराज (१८९६-१९७७) का लम्बा पतला चेहरा था। वे बहुत धीर और शान्त स्वभाव के थे। वे स्वल्पभाषी थे। पवित्रानन्दजी दूसरों के दुख-कष्ट को समझनेवाले तथा हृदयवान थे। उनका शरीर सबल नहीं होने पर भी मन अत्यन्त दृढ़ और सजग था। वे विद्वान, बुद्धिमान संन्यासी थे। पवित्रानन्दजी दीर्घकाल तक अद्वैत आश्रम के प्रबुद्ध भारत के सम्पादक और अध्यक्ष थे, जिसके फलस्वरूप वे अद्वैतभाव से भावित थे। किन्तु उनका हृदय भक्ति-भाव से ओत-प्रोत था। उनको १९१९ ई. में स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज से मन्त्र-दीक्षा प्राप्त हुई थी तथा १९२३ ई. में महापुरुष महाराज जी ने उनको संन्यास दिया था। वे १९३७ ई. में रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी हुए तथा तत्पश्चात् १९५१ ई. में न्यूयार्क वेदान्त सोसायटी के अध्यक्ष हुए। १९७७ ई. में उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग किया।

१९६० ई. में जब मैं अद्वैत आश्रम में ब्रह्मचारी था, तब स्वामी पवित्रानन्द जी के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीदकर भेजता था। तदुपरान्त १९७१ ई. में जब मैं हॉलीवुड गया तब न्यूयार्क में महाराज के पास चार दिन था। उन्होंने मुझे विमान-पत्तन से आश्रम में आने के लिए भक्त ऐरिक और जैक को भेजा था। तत्पश्चात् जॉन के द्वारा पूरे न्यूयार्क के दर्शनीय स्थलों को देखने की व्यवस्था की। महाराज प्रत्येक ग्रीष्म ऋतु में हॉलीवुड आते थे तथा स्वामी प्रभवानन्द जी के साथ रहते थे। वे मेरे पास वाले कमरे में रहते थे तथा रात्रि में भोजन के पश्चात् पुराने दिनों की बातें बताया करते थे। तथा उसे मैं अपने दैनन्दिनी में लिखता था।

०१/०७/१९७१, हॉलीवुड

स्वामी पवित्रानन्द जी ने कहा, मैं उस समय कोलकाता अद्वैत आश्रम के प्रकाशन विभाग में कार्य करता था। मन अस्थिर था। एक दिन महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द जी महाराज) से यह बताने पर उन्होंने कहा, ''प्रात:काल उठकर अधिक जप-ध्यान किया करो। उससे मन अच्छा रहता है। मैं ऐसा ही करता हूँ। मैं प्रात:काल ध्यान करता हूँ और पूरा दिन उसी ध्यान-तन्मयता में व्यतीत हो जाता है।'' मैंने उन्हें बताया कि सुबह जगकर जप-ध्यान करने का बहुत प्रयास किया, किन्तु उससे मेरा मस्तिष्क झिनझिन करता है तथा बाद में दिन के सेवा-कार्य करने में भी असुविधा होती है। यह सुनकर वे बहुत उद्विग्न होकर बोले, ''नहीं, नहीं, तब मत करना। अच्छी तरह सोना तथा जितना हो सके उतना जप-ध्यान करना।''

तदुपरान्त महापुरुष महाराज ने मुझे एक आशावाणी सुनायी, ''कोई-कोई बच्चा थोड़ा ही पढ़कर परीक्षा पास करता है, उसी प्रकार कोई-कोई थोड़ा परिश्रम करने से ही ईश्वर को प्राप्त करता है।''

जब मुझे 'प्रबुद्ध भारत' अंग्रेजी मासिक पत्रिका के सम्पादक के रूप में भेजा जाने लगा, तब मैंने अपनी योग्यता पर सन्देह व्यक्त करते हुए महापुरुष महाराज को बताया था। इस पर उन्होंने कहा था, ''अच्छी तरह से जप-ध्यान करो, इससे तुम श्रेष्ठ तरह से कार्य कर पाओगे।'' उन्होंने मुझे अन्य कोई उपदेश नहीं दिया।

०२/०७/१९७१, ट्राबुको मोनास्ट्री, कैलिफोर्निया

स्वामी पवित्रानन्द जी ने बताया कि मैं एक दिन YMCA के सचिव को लेकर बेलूड़ मठ में महापुरुष महाराज के पास गया।

सचिव – संसार में इतना दुख क्यों है?

महापुरुष महाराज – मैं नहीं जानता। किन्तु इस दुख से बाहर निकलने का मार्ग मैं जानता हूँ।

सचिव – मैं ईसाइयों से पूछता हूँ, 'आपने ईश्वर को देखा है?' तो वे उत्तर देते हैं, 'हाँ'। और मैं जब वही प्रश्न हिन्दुओं से पूछता हूँ, तो वे उत्तर देते हैं, 'नहीं'। इसीलिए क्या ऐसा नहीं लगता कि ईश्वर को प्राप्त करने का ईसाई धर्म उत्तम मार्ग है?

महापुरुष महाराज – मैं नहीं जानता।

सचिव – क्या आपने ईश्वर को देखा हैं?

महापुरुष महाराज – हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है। किन्तु मैं ईश्वर साक्षात्कार की परिसीमा को नहीं जानता। हमारे एक उपनिषद कहते हैं कि जो यह कहता है कि वह ईश्वर को जानता है, वह नहीं जानता और जो यह कहता है कि वह नहीं जानता, वह जानता है।

१३/०७/१९७२, हॉलीवुड

स्वामी पवित्रानन्द ने कहा, मैं हरि महाराज के साथ बहुत तर्क करता था। वे मुझसे बहुत प्रेम करते थे। एक दिन हरि

महाराज ने मुझसे पूछा, ''तुम क्या चाहते हो?'' मैंने कहा, ''महाराज, मैं क्या चाहता हूँ, यह नहीं जानता; किन्तु क्या नहीं चाहता हूँ, यह जानता हूँ।''

तत्पश्चात् हरि महाराज ने मुझसे कहा, ''स्वयं के परछाई-निराधार-तत्त्व के साथ युद्ध मत करो।''

शेक्सपियर के नाटक मैकबैथ में जिस प्रकार का वर्णन है, उस समय मेरा हृदय वैसा ही जल रहा था। जब मैंने हरि महाराज की ये बातें सुनीं, तो मेरा मन शान्त हो गया।

११/०७/१९७५, हॉलीवुड

स्वामी पवित्रानन्द ने स्वामी सारदानन्द जी महाराज के साथ हुए उनके वार्तालाप को बताया।

स्वामी पवित्रानन्द – महाराज, मैं ठाकुर का कार्य कर रहा हूँ, यह तो अनुभव मुझे नहीं होता। स्वामी सारदानन्द – तुम क्या अपने माँ-बाप के लिए कार्य कर रहे हो? स्वामी पवित्रानन्द – नहीं। स्वामी सारदानन्द – यहाँ कार्य करने पर क्या तुम वेतन पाते हो? स्वामी पवित्रानन्द – नहीं। स्वामी सारदानन्द – तुम अपने लिए नहीं करते, कम-से-कम इतना तो अनुभव करते हो? स्वामी पवित्रानन्द – हाँ। मैं यह कार्य करता हूँ, क्योंकि आपलोग मुझे ऐसा करने को कहते है।

स्वामी सारदानन्द – अभी के लिए इतना पर्याप्त है। बाद में समझ सकोगे कि किसके लिए कार्य कर रहे हो।

मुझे दक्षिण भारत में व्याख्यान तथा अन्य कार्य के लिए भेजा गया था। मैंने शरत महाराज से कहा, ''महाराज, मैं उसके लिए उपयुक्त नहीं हूँ, फिर भी आपलोग मुझे भेज रहे हैं। उत्तर में शरत महाराज ने कहा, ''मैं उपयुक्त नहीं हूँ, यह भाव रखना अच्छा है। यह भाव आत्मशक्ति से आता है और मैं उपयुक्त हूँ, यह भाव अहंकार से आता है।''

पश्चिम देश में सेवारत बहुत-से संन्यासी ग्रीष्म काल में घूमने के लिए हॉलीवुड आते थे। स्वामी प्रभवानन्द जी उन लोगों के साथ पहले लोगुना समुद्र तट, बाद में (मैलिबू समुद्र तट) पर जाकर रहते थे। उस समय जैसे कुम्भ-मेला लग जाता था। ठाकुर के पार्षदों की बातें, पुराने संन्यासियों की स्मृतियाँ साधुगण आपस में वार्तालाप करते थे। इन सब पुराने साधुओं से कितना कुछ सीखने के लिए है, जब यह सोचता हूँ, तब विस्मित हो जाता हूँ। यदि ये सब स्मृतियाँ रिकॉर्ड की जातीं, तो एक अमूल्य सम्पदा का संरक्षण हो जाता तथा आनेवाली पीढ़ियाँ भी इससे लाभान्वित होतीं। मैं कुछ-कुछ अपने दैनन्दिनी में लिखकर रखता था।

एक दिन पवित्रानन्दजी ने मुझसे कहा, ''देखो, जब तुम व्याख्यान दोगे, तब ठाकुर-स्वामीजी की बातों की अतिशयोक्ति नहीं करना। उनकी बातों को अपने ढंग से सजाकर मत कहना, नहीं तो सत्य से विच्युत हो जाओगे।'' यह बात मेरे मन में अंकित हो गयी। स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने भी एक बार मुझसे कहा था, ''व्याख्यान के समय श्रेष्ठतासूचक भाव का व्यवहार नहीं करना, जैसे वे सर्वश्रेष्ठ हैं या वे सबसे ऊपर हैं, इत्यादि। तुमने कैसे जाना कि वे सर्वश्रेष्ठ हैं? अभी देखता हूँ कि अनेक वक्तालोग सभा-समिति में ठाकुर-स्वामीजी के जीवन की घटना के ऊपर स्वयं का भाष्य देकर उसे नवीन तरह से प्रस्तुत करते हैं।'' उस समय पवित्रानन्दजी की बातें स्मरण हो आयीं।

१९७१ ई. से लेकर पाँच वर्ष तक ग्रीष्म काल में हॉलीवुड में पवित्रानन्दजी का सत्संग मुझे मिला है। न्यूयार्क में आने के पहले वे हमलोगों को अच्छी तरह से भोजन कराते थे। ४ जुलाई, १९७६ ई. को स्वामी प्रभवानन्द जी के शरीर-त्याग के बाद वे ग्रीष्म काल में हॉलीवुड न आकर बॉस्टन के निकट के मार्शफिल्ड रिट्रिट में गये। मैं भी बॉस्टन जाकर उनके साथ एक सप्ताह तक था। उन दिनों मैं उनके साथ भोजन करता था और उनके साथ घूमने जाता था।

१९७५ ई. में जब पवित्रानन्दजी हॉलीवुड आये, तब उन्होंने मुझसे कहा कि उनके पास हरि महाराज के अनेक पत्र हैं। मैंने उनसे पत्रों को प्रकाशित करवाने का अनुरोध किया। वे इसके लिए किसी प्रकार सहमत नहीं हुए। उन्होंने कहा, ''वे सब मेरे व्यक्तिगत पत्र हैं।'' फिर भी, मैंने हठ करते हुए कहा, ''क्योंकि वे हरि महाराज के द्वारा लिखित पत्र हैं, इसलिए उन सबको समाज के सामने लाने की आवश्यकता है।''

जो भी हो, न्यूयार्क वापस जाने के बाद महाराज अस्वस्थ हो गये और उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया। वे अपने साथ हरि महाराज के पत्र लेते गए तथा अस्पताल में रहकर ही १२ पत्रों की नकल की। नकल करके उन्होंने वे सब पत्र स्वामी विश्वाश्रयानन्द जी, उद्बोधन के पास भेज दिया। वह सब उद्बोधन पत्रिका में प्रकाशित हुआ तथा बाद में तुरीयानन्देर पत्रे (बंगला) में सम्मिलित हुआ। अस्पताल से वापस आने पर महाराज ने मुझे लिखा, ''देखो, मैंने तुम्हारी बात मान ली।'' इससे मैं बहुत आनन्दित हुआ था। स्वामी पवित्रानन्द जी महाराज ने नवम्बर, १९७७ ई. में अपना नश्वर शरीर का त्याग किया। **(क्रमशः)**

रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल के विवेकानन्द विद्यापीठ में २३ नवम्बर, २०२४ को वार्षिकोत्सव मनाया गया। प्राचार्य स्वामी कृष्णध्यानानन्द जी ने विद्यापीठ के क्रिया-कलापों एवं

उपलब्धियों पर प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। मुख्य अतिथि डॉ. राघवेन्द्र गुमास्ता जी ने विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास और उनके सुखद सफल जीवन की शुभकामना की। दिव्यांश सिंह को उत्कृष्ट विद्यार्थी के रूप में सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में आश्रम के स्वामी नित्यपूर्णानन्द, स्वामी अवनीपालानन्द जी की दिव्य उपस्थिति रही।

रामकृष्ण मठ, अमरकण्टक के द्वारा ९ नवम्बर, २०२४ को आंगनबाड़ी एवं शा.प्रा. विद्यालय, बांधा, अमरकण्टक में ९० स्वेटर और टोपी, १६ नवम्बर को अनुपपुर जिले के चारकुमार ग्राम में २०० कम्बल और १९ नवम्बर को माँ शारदा कन्या विद्यापीठ, पोड़की, अमरकण्टक में १२२ छात्राओं को स्वेटर एवं लोअर वितरित किये गये।

रामकृष्ण-विवेकानन्द वेदान्त समिति, नर्मदापुरम् में वार्षिकोत्सव आयोजित हुआ

रामकृष्ण-विवेकानन्द वेदान्त समिति, नर्मदापुरम् में १६ से १८ नवम्बर, २०२४ तक आश्रम का ११वाँ वार्षिकोत्सव मनाया गया। १६ नवम्बर को श्रीसारदा शान्ति आश्रम, ग्राम-पनारी, जिला-सिहोर, मध्य प्रदेश में मंगल आरती, स्तोत्र-पाठ, श्रीरामकृष्ण देव की विशेष पूजा, हवन आदि हुए। १२ बजे प्रसाद-वितरण किया गया।

१७ नवम्बर को कामगार कल्याण केन्द्र, एसपीएम, नर्मदापुरम् में **भक्त सम्मेलन** का आयोजन किया गया। आश्रम के सचिव स्वामी वीरेशानन्द जी ने सभी आगन्तुक सन्तों, भक्तों का स्वागत किया। सम्मेलन को स्वामी वेदनिष्ठानन्द, स्वामी

आदिपुरुषानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी नित्यज्ञानानन्द महाराज ने सम्बोधित किया। धन्यवाद ज्ञापन कुंडुजी ने किया। इसमें कुल १०० भक्तों ने भाग लिया। १८ नवम्बर को ११ बजे पं रामलाल शर्मा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, नर्मदापुरम् में **युवा सम्मेलन** हुआ, जिसे स्वामी वेदनिष्ठानन्द, स्वामी वीरेशानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी नित्यज्ञानानन्द महाराज ने सम्बोधित किया। कुल १५० छात्र उपस्थित थे। इसी दिन ३.३० बजे आश्रम के द्वारा आश्रम के सीटी सेन्टर में विभिन्न स्कूलों के ३० गरीब-मेधावी छात्र-छात्राओं को १ लाख ७० हजार रुपये की **छात्रवृत्ति** उपरोक्त संन्यासियों के कर-कमलों से प्रदान की गयी। सभी संन्यासियों ने छात्रों को सम्बोधित किया। इस प्रकार यह त्रिदिवसीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

रामकृष्ण सेवा मण्डल, भिलाई में भक्त-सम्मेलन

१० नवम्बर, २०२४ को रामकृष्ण सेवा मण्डल, भिलाई में भक्त सम्मेलन का आयोजन किया गया। कार्यक्रम का प्रथम सत्र प्रातः ९.३० बजे प्रारम्भ हुआ। दीप-प्रज्वलन के बाद आश्रम के अध्यक्ष श्री पवन कुमार शर्मा जी ने सबका स्वागत किया। तत्पश्चात् भक्तों ने श्रीरामकृष्णदेव-अष्टोत्तरशतनामार्चना की, गीता पाठ किया, जप-ध्यान किया और चर्पटपंजिका-स्तोत्र का पाठ किया। द्वितीय सत्र में श्रीरामकृष्ण-वचनामृत का पाठ और स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज के प्रवचन हुये। तदनन्तर प्रश्नोत्तर सत्र हुआ। धन्यवाद ज्ञापन शोभा शर्मा और कार्यक्रम का संचालन हीना मिश्रा ने किया। सम्मेलन में कुल ११० भक्तों ने भाग लिया।